महेंद्रभटनागर की कविता-गंगा

(डा. महेंद्रभटनागर की काव्य-चेतना के विविध रचनाधर्मी आयाम)

❷

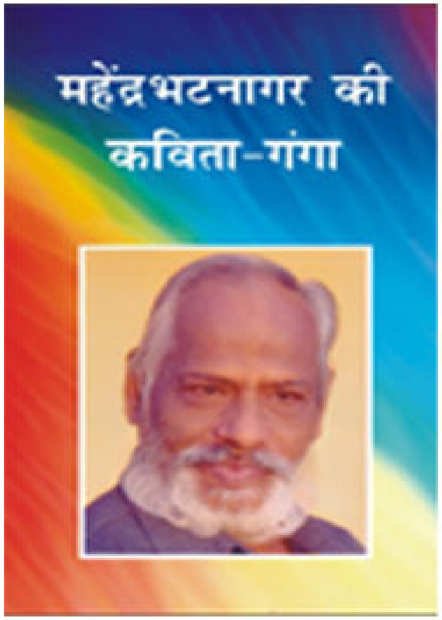

काव्य-कृतियाँ

1	नयी चेतना	1
2	मधुरिमा	63
3	जिजीविषा	107
4	संतरण	175
5	संवर्त	245-298

●

7

नयी चेतना

रचना-काल सन् 19481953

प्रकाशन सन् 1956

कविताएँ

1 बिजलियाँ गिरने नहीं देंगे !
2 ललकार
3 आज़ादी का त्योहार
4 अपराजित
5 चेतना
6 काटो धान
7 रोक न पाओगे
8 जागते रहेंगे
9 नया इंसान
10 आँधी
11 झंझावात
12 नव-निर्माण
13 ज़िन्दगी का कारवाँ
14 बढ़ते चलो
15 नये इंसान से तटस्थ-वर्ग
16 नयी दिशा
17 परम्परा
18 गन्तव्य
19 क्या हुआ
20 दूर खेतों पार
21 युग और कवि
22 विश्वास
23 आश्वस्त
24 दीपक जलाओ
25 आभास होता है
26 आज देखा है
27 मुझे भरोसा है
28 मुख को छिपाती रही
29 नया समाज
30 युगान्तर
31 छलना
32 मत कहो
33 नया युग
34 पदचाप
35 भोर का आह्वान
36 निरापद
37 सुर्खियाँ निहार लो

38 युग-परिवर्तन
39 नयी संस्कृति
40 गंगा बहाओ
41 नयी रेखाएँ
42 भविष्य के निर्माताओ
43 मेघ-गीत
44 बरगद
45 कवि

(1) बिजलियाँ गिरने नहीं देंगे !

कुछ लोग
चाहे ज़ोर से कितना
बजाएँ युद्ध का डंका
पर, हम कभी भी
शांति का झंडा
ज़रा झुकने नहीं देंगे !
हम कभी भी
शांति की आवाज़ को
दबने नहीं देंगे !

क्योंकि हम
इतिहास के आरम्भ से
इंसानियत में,
शांति में
 विश्वास रखते हैं,
गौतम और गांधी को
 हृदय के पास रखते हैं !

किसी को भी सताना
पाप सचमुच में समझते हैं,
नहीं हम व्यर्थ में पथ में
किसी से जा उलझते हैं !

हमारे पास केवल
विश्व-मैत्री का
परस्पर प्यार का संदेश है,

हमारा स्नेह -
पीड़ित ध्वस्त दुनिया के लिए
अवशेष है !

हमारे हाथ -
गिरतों को उठाएंगे,
हज़ारों
मूक, बंदी, त्रस्त, नत,
भयभीत, घायल औरतों को
दानवों के क्रूर पंजों से बचाएंगे !

हमें नादान बच्चों की हँसी
लगती बड़ी प्यारी ;
हमें लगती
किसानों के
गड़रियों के
गलों से गीत की कड़ियाँ
 मनोहारी !

ख़ुशी के गीत गाते इन गलों में
हम
कराहों और आहों को
कभी जाने नहीं देंगे !
हँसी पर ख़ून के छींटे
कभी पड़ने नहीं देंगे !

नये इंसान के मासूम सपनों पर
कभी भी बिजलियाँ गिरने नहीं देंगे !
1950

(2) ललकार

शैतान के साम्राज्य में तूफ़ान आया है,
जो ज़िन्दगी को मुक्ति का पैग़ाम लाया है !
 इंसान की तक़दीर को बदलो,
 भयभीत हर तस्वीर को बदलो,
हमारे संगठित बल की यही ललकार है !

मासूम लाशों पर खड़ा साम्राज्य हिलता है,
तम चीर कर जन-शक्ति का सूरज निकलता है,
चट्टान जैसे माथ उठते हैं
फ़ौलाद से दृढ़ हाथ उठते हैं
अमन के शत्रु से जो छीनते हथियार हैं !
हमारे संगठित बल की यही ललकार है !

लो रुक गया रक्तिम प्रखर सैलाब का पानी,
अब दूर होगी आदमी की हर परेशानी !
सूखी लताएँ लहलहाती हैं,
नव-ज्योति सागर में नहाती हैं,
ख़ुशी के मेघ छाये हैं, बरसता प्यार है !
हमारे संगठित बल की यही ललकार है !
1951

(3) आज़ादी का त्योहार

लज्जा ढकने को
मेरी खरगोश सरीखी भोली पत्नी के पास
नहीं हैं वस्त्र,
कि जिसका रोना सुनता हूँ सर्वत्र !
घर में, बाहर,
सोते-जगते
मेरी आँखों के आगे
फिर-फिर जाते हैं
वे दो गंगाजल जैसे निर्मल आँसू
जो उस दिन तुमने
मैले आँचल से पोंछ लिए थे !

मेरे दोनों छोटे
मूक खिलौनों-से दुर्बल बच्चे
जिनके तन पर गोश्त नहीं है,

जिनके मुख पर रक्त नहीं है,
अभी-अभी लड़कर सोये हैं,
रोटी के टुकड़े पर,
यदि विश्वास नहीं हो तो
अब भी
तुम उनकी लम्बी सिसकी सुन सकते हो
जो वे सोते में
रह-रह कर भर लेते हैं !
जिनको वर्षा की ठंडी रातों में
मैं उर से चिपका लेता हूँ,
तूफ़ानों के अंधड़ में
बाहों में दुबका लेता हूँ !

क्योंकि, नये युग के सपनों की ये तस्वीरें हैं !
बंजर धरती पर
अंकुर उगते धीरे-धीरे हैं !

इनकी रक्षा को
आज़ादी का त्योहार मनाता हूँ !
अपने गिरते घर के टूटे छज्जे पर
कर्ज़ा लेकर
आज़ादी के दीप जलाता हूँ !
अपने सूखे अधरों से
आज़ादी के गाने गाता हूँ !
क्योंकि, मुझे आज़ादी बेहद प्यारी है !
मैंने अपने हाथों से
इसकी सींची फुलवारी है !

पर, सावधान ! लोभी गिद्धो !
यदि तुमने इसके फल-फूलों पर
अपनी दृष्टि गड़ाई,
तो फिर

करनी होगी आज़ादी की
फिर से और लड़ाई !
1951

(4) अपराजित

हो नहीं सकती पराजित युग-जवानी !

संगठित जन-चेतना को,
नव-सृजन की कामना को,
सर्वहारा-वर्ग की युग -
युग पुरानी साधना को,
आदमी के सुख-सपन को,
शांति के आशा-भवन को,
और ऊषा की ललाई
से भरे जीवन-गगन को,
मेटने वाली सुनी है क्या कहानी ?

पैर इस्पाती कड़े जो
आँधियों से जा लड़े जो,
हिल न पाये एक पग भी
पर्वतों से दृढ़ खड़े जो,
शत्रु को ललकारते हैं,
जूझते हैं, मारते हैं,
विश्व के कर्त्तव्य पर जो
ज़िन्दगी को वारते हैं,
कब शिथिल होती, प्रखर उनकी रवानी !

शक्ति का आह्वान करती,
प्राण में उत्साह भरती,
सुन जिसे दुर्बल मनुज की
शान से छाती उभरती,
जो तिमिर में पथ बताती,

हर दिशा में गूँज जाती,
क्रांति का संदेश नूतन
जा सितारों को सुनाती,
बंद हो सकती नहीं जन-त्राण-वाणी !
1951

(5) चेतना

हर दिशा में जल उठी ज्वाला नयी,
लालिमा जीवन-जगत पर छा गयी !

है नयी पदचाप से गुंजित मही,
ज्योति अभिनव हर किरण बिखरा रही !

छिन्न सदियों का अँधेरा हो गया,
राह पर जगमग सबेरा है नया !

यह विगत युग का न कोई साज़ है,
रूप ही बदला धरा ने आज है !

वर्ग-भेदों को मिटाने चेतना
कर रही सामान्य की आराधना !

काल बदला और बदली सभ्यता,
दे रही नव फूल संस्कृति की लता !

फूल वे जिनमें मधुर सौरभ भरा,
मुसकराती पा जिन्हें भू-उर्वरा !

स्वार्थ, शोषण की इमारत ढह रही,
भग्न ढूहों पर सृजन-सरि बह रही !

शीत के लघु-ताप से सिकुड़े हुओं,

पास आता जा रहा 'क्यूरो सिवो' !

धूप से झुलसे हुए 'होरी' कृषक
आ रही 'जल की हवा' जीवन-जनक !

उर लगाले जीर्ण 'धनिया'-देह को
(रोक ले रे ! छलछलाते स्नेह को !)

आज तो आकाश अपना हो गया,
आदमी का, सत्य सपना हो गया !
1948

(6) काटो धान

काटो धान, काटो धान,
काटो धान !

सारे खेत
देखो दूर तक कितने भरे,
कितने भरे / पूरे भरे !
घिर लहलहाते हैं
न फूले रे समाते हैं !
हवा में मिल
कुसुम-से खिल

उठो, आओ,
चलो, इन जीर्ण कुटियों से
बुलाता है तुम्हें, साथी !
खुला मैदान !

जब हिम-नदी का चू पड़ा था जल
अनेकों धार में चंचल,
हिमालय से

बहायी जो गयी थी धूल
उसमें आज खिलते रे श्रमिक !
तेरे पसीने से सिँचे
प्रति पेड़ की हर डाल में
सित, लाल, पीले, फूल !
जीन के लिए देती तुम्हें
ओ ! आज भू माता
सहज वरदान !

आकाश में जब घिर गये थे
मॉनसूनी घन सघन काले,
हृदय सूखे हुए
तब आश-रस से भर गये थे
झूम मतवाले !

किसी
सुन्दर, सलोनी, स्वस्थ, कोमल, मधु
किशोरी के नयन
कुछ मूक भाषा में
नयी आभा सजाए जगमगाए श्वेत-कजरारे !
हुए साकार
भावों से भरे
अभिनव सरल जीवन लिए,
नूतन जगत के गान !

जो सृष्टि के निर्माण हित बोए
तुम्हारी साधना ने बीज थे
वे पल्लवित !
सपने पलक की छाँह में
पा चाह
शीतल ज्योत्स्ना की गोद में खेले !
(अरी इन डालियों को बाँह में ले ले !)

उठो !
कन्या-कुमारी से अखिल कैलाश के वासी
सुनो, गूँजी नयी झंकार !
हर्षित हो उठो !
परिवार सारे गाँव के
देखो कि चित्रित हो रहे अरमान !

टूटे दाँत / सूखे केश,
मुख पर
झुर्रियों की वह सहज मुसकान,
प्रमुदित मुग्ध
फैला विश्व में सौरभ
महकता नभ,
सजग हो आज
मेर देश का अभिमान !
1948

(7) रोक न पाओगे

जग में आज सुनायी देती आवाज़ नयी,
जिसकी प्रतिध्वनि भू के कण-कण में गूँज गयी !

समझ गये शोषित-पीड़ित जिसका अर्थ सभी,
अब तो जन-शक्ति-विपथ के साधन व्यर्थ सभी !

मूक जनों को आज गिरा का वरदान मिला,
श्रमजीवी-जन को अपना प्यारा गान मिला,

युग-युग की अवरुद्ध उपेक्षित नव-राह खुली,
जन-पथ के सब द्वार खुले, जग-जनता निकली !

विजयी घोषों से फट-फट पड़ती है तुरही,
काँप रहा है आज गगन, काँपी आज मही !

विशृंखल; वर्गों की निर्मित सारी कड़ियाँ,
देश-काल की अब सीमा मिटने की घड़ियाँ !

नक़ली दीवारो ! नहीं रुकगी नयी हवा ,
बस, कर दो राह कि बचने की है यही दवा !

जर्जर संस्कृति के रक्षक भागो ! आग लगी !
इन अँगारों से तो लपटों की धार जगी !

इसको और हृदय से चिपटाना घातक है,
आसक्ति, तुम्हारी ही काया की भक्षक है !
1948

(8) जागते रहेंगे

आग बन गया
उपेक्षितों का वर्ग ;
कि ढह रहा प्रवंचना का दुर्ग !
पत्थरों के कोयले धधक उठे,
लपट मशाल बन
हवा के संग
अंधकार पर प्रहार कर रही !

जगमगा उठी
दमित युगों की रात;
पर्व है 'नुशूर' का -
मृतक शरीर कब्र फोड़
जागता है नींद छोड़ !

जंगलों के पेड़
खड़खड़ा उठे !
ये आँधियाँ हैं
जो कभी उड़ी नहीं,

ये बिजलियाँ हैं
जो कभी गिरी नहीं,
कि बदलियाँ गभीर
जो कभी घिरी नहीं !
गरज से कड़कड़ा रहा
दंत पीस क्रुद्ध दिग-दिगन्त !

संगठित समूह की दहाड़ से
नये समाज में
तमाम शोषकों के कागज़ी पहाड़
राख हो रहे !
कि जड़ समेत सब उखड़
हवा के तामसी महल
सहज में ख़ाक हो रहे !

यह आग है कि
बर्फ़ की तहों से दब न पायगी,
कि क्षिप्र जल की धार से
कभी भी बुझ न पायगी !
जब तलक है
अंधकार शेष इस ज़मीन पर
तब तलक
अमीर खटमलों-सा
चूसता रहेगा निर्धनों का रक्त !
हर गली में
भूत की डरावनी हँसी
निराट गूँजती रहेगी
तब तलक !

प्रसुप्त
प्रस्तरों की चादरों को छोड़,
प्रांशु भाल,

प्राज्य शक्ति,
ध्रुव प्रतीति ले
उठा रहा प्रहारना का अस्त्र !
है असाँच-गर्व मृत,
असार
अस्तमन, विधुर, विपन्न ;
अब विभीषिका-विभावरी
विभास से विभीत पिंगला !

नवीन ज्योति का
सशक्त कारवाँ चला,
कि गिर रहा है टूट-टूट कर
क़दम-क़दम पर अंधकार !
जागते रहेंगे हम,
कि जब तलक
यह रुद्ध-राह-द्वार
खुल न जायगा,
यह वर्ग-भेद, जाति-द्वेष
मिट न जायगा,
हमारी धमनियों में
ख़ून खौलता रहेगा
तब तलक !
1949

(9) नया इंसान

आज नया इंसान, पड़ी चरणों की, तोड़ रहा ज़ंजीर !

उबल उठा है स्वस्थ युगों की ताक़त का उन्माद,
जन-जन के बंदी जीवन को करने को आज़ाद,
उजड़े ध्वस्त घरों को फिर से करना है आबाद,
आगे बढ़ना है सदियों का छाया सघन अँधेरा चीर !

हिलते महलों की दीवारों से आती आवाज़,
भय से ग्रस्त कि मानों हो ही गिरने वाली गाज,
मिटनेवाला है अब जग का शोषक-जीर्ण-समाज,
निश्चय, अब रह न सकेंगे दुनिया में आदमख़ोर अमीर !

जन-बल के क़दमों की आहट से गूँजा संसार,
दुर्बल बन दुश्मन का वक्ष दहलता है हर बार,
खुलते जाते अवरुद्ध-पंथ के लो सारे द्वार,
अब धार नहीं बाक़ी, खा ज़ंग गयी सामंती-शमशीर !

सत्य प्रखर अब सम्मुख आया, जीत गया विश्वास,
वांछित नवयुग पास कि लुप्त हुआ पिछला आभास,
अब रखनी न सुरक्षित मन में कोई खोयी आस,
दुनिया के परदे पर, हर मानव की आज नयी तसवीर !
आज नया इंसान, पड़ी चरणों की, तोड़ रहा ज़ंजीर !

1950

(10) आँधी

बड़ा शोर करती उठी आज आँधी,
क्षितिज-से-क्षितिज तक घिरी आज आँधी !

समुन्दर जिसे देखकर खिलखिलाया,
निखिल सृष्टि काँपी प्रलय-भय समाया !

पुराने भवन सब गिरे लड़खड़ाकर,
बड़ी तेज़ आयीं हवाएँ हहर कर !

दिवाकर किसी का छिपा थाम दामन,
दहलता भयावह बना विश्व-आँगन !

उमड़ता नये जोश में वन्य-दरिया,
लहरता नवल होश में वन्य-दरिया !

रुकेगी न आँधी सरीखी जवानी,
बना कर रहेगी नयी ही कहानी !

असम्भव कि ठहरे रुकावट पुरानी,
शिथिल हो न पायी कभी भी रवानी !

न रोके रुकेगी बड़ी शक्तिशाली,
न फीकी पड़ेगी कभी द्रोह लाली !

कि चीलें उतरती चली आ रही हैं,
अँधेरी घटाएँ घुमड़ छा रही हैं !

मगर खोल सीना अकेला डगर पर
बढ़ा जा रहा जूझता जो निरन्तर,

वही व्यक्ति दृढ़ शक्ति-युग का तरुण है,
बदलना धरा को कि जिसकी लगन है !

विरोधी रुकावट मिटाता चला जो,
नदी शांति की नव बहाता चला जो,

वही क्रांति आभास-दृष्टा सदा से,
वही विश्व-इतिहास-स्रष्टा सदा से,

उसी की सबल मुक्त लंबी भुजाएँ
नये ख़ून से मोड़ देंगी हवाएँ !

1951

(11) झंझावात

पूरब में
नयी जन-चेतना का
आज झञ्झावात आया है !

अमिट विश्वास ने
इंसान के उर में,
बड़ा मज़बूत
अपना घर बनाया है !

तभी तो
दुश्मनों के शक्तिशाली दुर्ग पर
क्रोधित हवाएँ
दौड़तीं ललकारतीं
जा जूझ टकरायीं,
कि जिससे दुर्ग के
प्राचीर, गुम्बज, कोट
होते हैं धराशायी !

उभरती शक्ति जनता की
दबाये अब नहीं दबती,
धधकती द्रोह की ज्वाला
बुझाये अब नहीं बुझती !
अथक संघर्ष चारों ओर
नूतन ज़िन्दगी का है,
कि नूतन ज़िन्दगी वह जो
मिटाये मिट नहीं सकती !

गगन को घेर कर
चिनगारियाँ जिसकी
चमकती और उड़ती हैं,
उसी के ताप से
फ़ौलाद की दृढ़ शृंखलाएँ दृप्त
मुड़ती हैं !
बड़ी गहरी घटाएँ
आसमानों पर घुमड़ती हैं !

न सरकेगी कभी चट्टान
जिस पर उठ रही
दुर्भेद्य नव दीवार !
हिंसक भेड़ियों
नंगे लुटेरों की
कहीं नीचे दबी है लाश !
होगी सर्वहारा-वर्ग की
निश्चय सुरक्षा;
क्योंकि आया आज पूरब में
नयी जन-चेतना का
तीव्र झंझावात !
1950

(12) नव-निर्माण

मैं निरंतर राह नव-निर्माण करता चल रहा हूँ
और चलता ही रहूँगा !

राह -जिस पर कंटकों का
जाल, तम का आवरण है,
राह -जिस पर पत्थरों की
राशि, अति दुर्गम विजन है,
राह -जिस पर बह रहा है
टायफ़ूनी-स्वर-प्रभंजन,
राह -जिस पर गिर रहा हिम
मौत का जिस पर निमंत्रण,

मैं उसी पर तो अकेला दीप बनकर जल रहा हूँ,
और जलता ही रहूँगा !

आज जड़ता-पाश, जीवन
बद्ध, घायल युग-विहंगम,
फड़फड़ाता पर, स्वयं

प्राचीर में फँस, जानकर भ्रम,
मौन मरघट स्तब्धता है
स्वर हुआ है आज कुंठित,
सामने बीहड़ भयातंकित
दिशाएँ कुहर गुंठित,

विश्व के उजड़े चमन में फूल बनकर खिल रहा हूँ
और खिलता ही रहूँगा !
1948

(13) ज़िन्दगी का कारवाँ

ज़िन्दगी का कारवाँ रुकता नहीं, रुकता नहीं !

ये क्षणिक तूफ़ान तो आते गुज़र जाते,
केश केवल कुछ हवा में उड़ बिखर जाते !
पर, सतत गतिमय क़दम इंसान के कब डगमगाये ?
और ताक़त से इसी क्षण पैर जनबल ने उठाये !
ज़िन्दगी का कारवाँ यह
आफ़तों के सामने झुकता नहीं, झुकता नहीं !

रह नहीं सकती हमेशा यामिनी काली,
रोज़ फूटेगी नयी आकाश से लाली
देख कर जिसको, मनुज हर, दौड़ कर स्वागत करेगा,
पर, तिमिर से डर भयावह रुग्ण क्या साँसें भरेगा ?
ज़िन्दगी का कारवाँ यह
भाग्य के निर्मित सितारों को कभी तकता नहीं !

मेघ के टुकड़े सरीखा यह अकेलापन,
है बड़ा इससे कहीं चलता हुआ जीवन !
राह चाहे जल-विहीना, वृक्ष-हीना, रेतमय हो,
राह चाहे व्यक्तिहीना, घर-विहीना, ज्योति लय हो,
ज़िन्दगी का कारवाँ यह

हार कर संघर्ष-पथ पर भूल कर थकता नहीं !

जिस हृदय ने साफ़ अपना लक्ष्य देख लिया
वह तो बहाएगा सदा ही आश का दरिया !
लड़खड़ाता चल रहा जो, मौत की तसवीर है वह,
जो रुका है मध्य पथ में, रोग-वाहक नीर है वह,
ज़िन्दगी का कारवाँ यह
मिट निराशा की नदी में डूब बह सकता नहीं !
1952

(14) बढ़ते चलो

राह पर बढ़ते चलो !

दूर मंज़िल है तुम्हारी,
पर, क़दम होंगे न भारी,
आज तक युग की जवानी ने कभी हिम्मत न हारी !
आँधियों से जूझनेवालो !
निडर हँस-हँस प्रखर बढ़ते चलो !

बल अमिट विश्वास का है,
बल अतुल इतिहास का है,
बल अथक भावी जगत में फिर नये मधुमास का है,
ओ युवक ! निज रक्त से नव-दृढ़
इमारत विश्व में गढ़ते चलो !

तम बिखरता जा रहा है,
नव सबेरा आ रहा है,
सृष्टि का कण-कण सृजन का गीत अभिनव गा रहा है,
इसलिए तुम भी
नये युग की प्रतिष्ठा के लिए लड़ते चलो !
1952

(15) नये इंसान से तटस्थ-वर्ग

ओ नये इंसान !
तुमसे एक मुझको बात करनी है;
बात वह ऐसी कि जिसको
वर्ग के मेरे अनेकों
मर्द, औरत,
वृद्ध, बच्चे, नवयुवक
सब चाहते हैं आज तुमसे पूछना।

और वह है ज़िन्दगी की
आज से बेहतर, नयी, खुशहाल
प्यारी ज़िन्दगी की बात !

जो कि उस दिन,
याद है मुझको
अधर में रुक गयी थी,
क्योंकि तुम संघर्ष में रत थे !
विराधी चोट से सारे
तुम्हारे अंग आहत थे !

तुम्हारे पास, पर,
उज्ज्वल भविष्यत् का बड़ा विश्वास था,
आदमी की शक्ति का इतिहास था;
उसकी विजय का चित्र
आँखों में उभरता था,
युगों का स्नेह
इस घायल धरित्री पर बिखरता था,

तभी तो तुम
दमन के बादलों को चीर कर
काली मुसीबत की

भयानक रात का उर भेद कर,
अभिनव किरण बनकर
नये इंसान की संज्ञा
जगत से पा रहे हो !
और उसको तुम
प्रगति पथ पर
सतत ले जा रहे हो !

पास मंज़िल है,
उछलता भोर का दिल है,
बड़ा नज़दीक साहिल है !

भरोसा है मुझे निश्चय
तुम्हारे हर इरादे पर,
अकेली बात इतनी है
कि तुम कैसी नयी दुनिया बनाओगे ?
हृदय में आज मेरे भी
नयी रंगीन दुनिया की
नयी तसवीर है,
दुनिया को बदलने की
प्रसविनी पीर है !
क्या तुम उसे भी देख
मुझको साथ लेकर चल सकोगे ?

क्योंकि मैं अबतक
विलग, निर्लिप्त तुमसे
मध्यवर्ती,
दूर,
और तटस्थ था !

1951

(16) नयी दिशा

चारों ओर है गतिरोध !
पथ अवरुद्ध,
खंडित मान्यताएँ हीन,
जर्जर रूढ़ियों की सामने प्राचीन
फैली 'चीन की दीवार' !
कैसे चढ़ सकोगे
और कैसे कर सकोगे पार ?

बोलो !
ये पुरातन नीतियाँ, विश्वास,
मृत औ' संकुचित दर्शन पुराना ले,
पुरानी धारणाओं से,
पुरानी कल्पनाओं से
कभी क्या जीत पाओगे ?
कभी अपने बनाये लक्ष्य को
साकार कर क्या देख पाओगे ?

बदलते विश्व के सम्मुख,
कि अनुसंधान
जब विज्ञान के बढ़ते चले जाते,
नये साधन, कलें नूतन
व आविष्कार बढ़ प्रतिपल
चुनौती आज
गर्वोन्नत 'जगत की छत' खड़े पामीर को देते,
उठे एवरेस्ट,
गहन प्रशान्त-सागर को,
अनेकों ग्रह-सितारों को,
चमकते दूर चंदा को,
नये उन्नत विचारों के सहारे
जो सतत अधिकार में अपने

सदा करते बढ़े जाते !
हुए पूरे
न होनी आज चाहों के सभी सपने !

ज़रा उठ खोल तो आँखें
नयी फैली दमकती रोशनी के सामने !
लो फिर करो उपयोग,
तुम हर वस्तु का उपभोग !
मनुज हो तुम
लिए बल-बुद्धि का भंडार,
मनुजता के सभी अधिकार,
प्रगति का है तुम्हें वरदान,
दुर्दम शक्ति का अभिमान,
तुम्हारा ध्येय है
तोड़ो पुरानी ज़िन्दगी के तार,
जिनमें बज न सकती अब मधुर झंकार !
कहाँ तक कर सकोगे शोध ?
है सब व्यर्थ सारा क्रोध !

जब सब डगमगायी हैं दिवारें
नींव से -
गिर कर रहेंगी ही,
कि जब ये आँधियाँ चल दीं क्षितिज से
शीघ्र आ घिर कर रहेंगी ही !

तुम्हें तो छोड़ना है
आज यह अपनत्व की
हर वासना का रूप,
कर दो बन्द
तम से ग्रस्त अवनति कूप !
असफल मोह से कर द्रोह,
मिथ्या स्वप्न की माया,

खड़ी बन शून्य की
निस्सार धुँधली क्षीण-सी छाया
कि जिसमें है न कोई आज आकर्षण !
निरर्थक क्या ?
अरे घातक !

सजग हो जा
नहीं तो नाश निश्चित है,
खड़ा हो जा
सुदृढ़ चट्टान-सा बनकर
नहीं तो धर्म तेरा रे कलंकित है,
कि बढ़कर रोक ले तूफ़ान
वरना आज
पौरुष धैर्य विगलित है !
न हो भयभीत
तेरे सामने हुंकारता है बढ़
ज़माना नव्य,
भावी विश्व की ले कल्पना दृढ़ भव्य !

जनता की प्रखर आवाज़
गूँजी आज,
जो किंचित नहीं अब चाहती है
'ताजवालों' का कहीं भी राज !

पीड़ित, त्रस्त, शोषित, सर्वहारा की
उमड़ती बाढ़-सी धारा,
लगाकर यह गगन-भेदी सबल नारा -
नयी दुनिया बनानी है !
न होगा चिन्ह जिसमें एक भी
मृत घृणित पूँजीवाद का,
बरबाद होगा विश्व से
हर रूप तानाशाह का,

केवल जगत् नव-साम्य-पथ पर
ले सकेगा साँस,
सुख की साँस !
जिसमें आश
नूतन ज़िन्दगी की ही भरी होगी,
कि जिसकी राह पर चलकर
धरा सूखी हरी होगी !
मिटा देगा उसी पथ का बटोही
दुःख के पर्वत,
विषमता की गहनतम खाइयाँ
सब पाट देगा
कर्म का उत्साह,
नूतन चेतना की प्रेरणा से
ये पुराने सब
क़िले, दीवार, दरें टूट जाएँगे !
1949

(17) परम्परा

परम्परा, परम्परा, परम्परा !

जकड़ लिया
मिटा दिया
निशान धूल झोंक कर
युगों चला लिया,
गुलाम हो गये
बना स्वयं अनेक रीतियाँ
प्रथा बनाम रूढ़ियाँ !

नवीन स्वर नहीं सुना ?
नया स्वरूप भी नहीं दिखा ?
बदल गया जहान
सत्य आ गया खरा !

कहाँ गयी
परम्परा, परम्परा, परम्परा ?

अंध मान्यता,
कठोर मान्यता,
असार मान्यता !
अरे बता -
कि धर्म ... धर्म ... धर्म ... की पुकार
मच रही,
यहाँ वहाँ सभी जगह
कि मार-धाड़,
हो गया मनुज गवाँर,

कौन-सा अमूल्य धर्म वह सुना रहा ?

कुरान ?
वेद ? उपनिषद ? पुराण ?
बाइबिल ?
सभी बदल चुके !
नवीन ग्रन्थ और एक 'ईश' चाहिए,
कि जो युगीन जोड़ दे
नया, नया, नया !
व लहलहा उठे
मनुज-महान-धर्म की
सड़ी-गली लता !

सुधार मान्यता,
नवीन मान्यता,
सशक्त मान्यता !

न व्यर्थ मोह में पड़ो
न कुछ यहाँ धरा !

बदल परम्परा, परम्परा, परम्परा !
1948

(18) गन्तव्य

यह जीवन का गन्तव्य नहीं !

निष्फल क्षय-ग्रस्त कराहों का,
इन सूनी-सूनी राहों का,
असफल जीवन की आहों का,
    स्वप्न-निमीलित, मोह-ग्रसित यह
    जाग्रत-उर का मन्तव्य नहीं !

वैयक्तिक स्वार्थों पर निर्मित ,
आत्म-तुष्टि के साधन सीमित,
पथ पार्थिव सुख पर कर लक्षित,
    जन-मन-रागों से दूर कहीं
    मानवता का भवितव्य नहीं !

बीते युग पर पछताने का,
या याद पुरानी गाने का,
है ध्येय न आज ज़माने का,
    युग की वाणी से रही विमुख
    एकांत-कला क्या भव्य कहीं ?
1952

(19) क्या हुआ?

वही शिथिल, अस्वस्थ, रुग्ण है शरीर,
क्या हुआ पहन लिया नवीन चीर ?
वही थके चरण,
वही दबे नयन,
कि क्या हुआ क्षणिक सुरा
    उतर गयी गले ?

निमिष नज़र के सामने
अगर यह छा गया चमन !
सपन बहार आ गयी !

समीर है वही गरम-गरम,
मरण-वरण बुख़ार
वही गिर रही
उसी प्रकार
शीश से मनुष्य के
अशेष रक्त-धार !
झनझना रहे
हृदय के तार-तार !
1951

(20) दूर खेतों पार

शीत की काली भयावह रात !

दूर खेतों पार जर्जर ढूह
जीवन स्तब्ध,
धुंध भीषण, काँपती प्रति रूह;
जन-मन दग्ध,
मूक प्राणों के दमन की बात !

मर्म पर अंतिम विनाशक चोट
घायल त्रस्त,
ले तिरस्कृत प्राण, रज में लोट
पीड़ा ग्रस्त
बद्ध, शोषित, रक्त से तन स्नात !

एक रोदन का करुणतम शोर
गौरव नष्ट,
छा रहा वैषम्य-विष चहुँ ओर

संस्कृति भ्रष्ट,
साँस प्रति कंपन सिहरता गात !

नाशकारी गाज सिर पर टूट
मानव दीन,
सभ्यता का अर्थ हिंसा लूट
ममता हीन,
खो गया तम के विजन में प्रात !
1951

(21) युग और कवि

नाश का क्रन्दन भरा,
यह हार का
दारिद्र्य का
दुर्भिक्ष का
अवरुद्ध पथ का
युद्ध का
मिटता हुआ,
बंधुत्व से हटता हुआ
इतिहास है, इतिहास है !
संस्कृति, कला औ’ सभ्यता का
सामने मानों खड़ा उपहास है !

जब आज दानव कर रहा
शोषण भयंकर
रूप मानव का बनाये,
और उठती जा रही हैं
स्नेह, ममता की
मनुज-उर-भावनाएँ,
बढ़ रही हैं तीव्र गति से
श्वास पर हर
चिर बुभुक्षित मानवों के

दग्ध-जीवन की
विषैली गैस-सी घातक कराहें !

ध्वंस का
निर्मम मरण का,
घोर काला
यातना का
चित्र यह म्रियमाण है !
उजड़ा हुआ है अन्दमन-सा !
सिहरता तीखा मरण का गान है !

आदर्श सारे गिर रहे;
मानव बुझा कर
ज्ञान का दीपक
निविड़तम-बद्ध दुनिया
देखना बस चाहता है;
क्योंकि उसके पाप अगणित
कौन है जो देख पाएगा ?

धरा पर
'शांति, सुख, नवयुग-व्यवस्था' के लिए
वह लूट लेगा
विश्व का सर्वस्व !
लोभी ! लड़ रहा है,
कर रहा है ध्वस्त
कितने लहलहाते खेत,
मधु जीवन !
    रही है मिट मनुजता ही स्वयं
    मानों कि की
    'हाराकिरी' भगवान ने !

है मंद जीवन-दीप की

आभा सुनहली।
युग हुआ शापित कलंकित ;
किन्तु तुम होना न किञ्चित
धैर्य विगलित, चरण विजड़ित !

कवि उठो !
रचना करो,
तुम एक ऐसे विश्व की
जिसमें कि सुख-दुख बँट सकें,
निर्बन्ध जीवन की
लहरियाँ बह चलें,
निर्द्वन्द्व वासर
स्नेह से परिपूर्ण रातें कट सकें,
सब की,
श्रमात्मा की, गरीबों की
न हो व्यवधान कोई भी !

नये युग का नया संदेश दो !
हर आदमी को आदमी का वेश दो !

1947

(22) विश्वास

बढ़ो विश्वास ले, अवरोध पथ का दूर होएगा !

तुम्हारी ज़िन्दगी की आग बन अंगार चमकेगी,
अँधेरी सब दिशाएँ रोशनी में डूब दमकेंगी,
    तुम्हारे दुश्मनों का गर्व चकनाचूर होएगा !

सतत गाते रहो वह गीत जिसमें हो भरी आशा,
बताए लक्ष्य की दृढ़ता तुम्हारी आँख की भाषा,
    विरोधी हार कर फिर तो, तुम्हारे पैर धोएगा !

मुसीबत की शिलाएँ सब चटककर टूट जाएँगी,
गरजती आँधियाँ दुख की विनत हो धूल खाएँगी,
तुम्हारे प्रेरणा-जल से मनुज सुख-बीज बोएगा !

1951

(23) आश्वस्त

ज़िन्दगी के दीप जिसने हैं बुझाये,
और भू के गर्भ से
उगते हुए पौधे मिटाये,
शस्य-श्यामल भूमि को बंजर किया जिसने,
नवल युग के हृदय पर मार
पैना गर्म यह खंजर दिया जिसने
उसी से कर रही है लेखनी मेरी बग़ावत !
रुक नहीं सकती
कि जब तक गिर न जाएगा धरा पर
आततायी मत्त गर्वोन्नत,
रुक नहीं सकता कभी स्वर
जब मुखर होकर
गले से हो गया बाहर,
रुक नहीं सकता कभी तूफ़ान
जिसने व्योम में हैं फड़फड़ाए पर,
रुक नहीं सकता कभी दरिया
कि जिसने खोल आँखें
ख़ूब ली पहचान बहने की डगर !
वह तो फैल उमड़ेगा,
कि चढ़कर पर्वतों की छातियों पर
कूद उछलेगा !
सभी पथ में अड़ी भीतें
गरज उन्मुक्त तोड़ेगा !

मुझे विश्वास है साथी
तुम्हारे हाथ

इतने शक्तिशाली हैं
कि प्रतिद्वन्द्वी पराजित हो
अवनि पर लोट जाएगा,
तुम्हारी आँख में
उतरी बड़ी गहरी चमकती तीव्र
लाली है
कि जिससे आज मैं आश्वस्त हूँ !
युग का अँधेरा छिन्न होएगा,
सभी फिर से बुझे दीपक
नयी युग-चेतना के स्नेह को पाकर
लहर कर जल उठेंगे !
सृष्टि नूतन कोपलों से भर
सुखी हो लहलहाएगी !
कि मेरी मोरनी-सी विश्व की जनता
नये स्वर-गीत गाएगी !
व खेतों में निडर हो
नाचकर पायल बजाएगी !

1952

(24) दीपक जलाओ

आज मेरे स्नेह से दीपक जलाओ !

विश्व कुहराच्छन्न, धूमिल सब दिशाएँ,
चल रही हैं घोर प्रतिद्वन्द्वी हवाएँ,
त्राण मेरे अंक में, आकर समाओ !

आज नूतन फूटती आओ जवानी,
मुक्त स्वर में गूँज लो अवरुद्ध वाणी,
यह नवल संदेश युग का, कवि, सुनाओ !

गिर रही हैं जीर्ण दीवारें सहज में,
टूटती हैं शीर्ण मीनारें सहज में,

हो नया निर्माण, जर्जरता हटाओ !

आज मेरी बाहुओं का बल तुम्हारा,
आज मेरा शीश - प्रण अविचल तुम्हारा,
त्रस्त, घायल, सुप्त दुनिया को जगाओ !
1950

(25) आभास होता है

आभास होता है
कि सदियों बद्ध बंधन
आज खुलकर ही रहेंगे !
इन धुएँ के बादलों से
आग की लपटें लरज कर
व्योम को
निज बाहुओं में घेर लेंगी !
शक्तिमत्ता-मद
विषैला-नद जलेगा,
हर उपेक्षित भीम गरजेगा
तुमुल संगर धरा पर !

गढ़ दमन के
राह के फैले हुए आटे सदृश
संघर्ष की भीषण हहरती
आँधियों के बीच
उड़ मिट जाएँगे !

विश्वास होता है
कि दौड़ा आ रहा
उन्मुक्त युग-खग,
सब पुरातन जाल जर्जर तोड़कर !

अब तो जलेगा

सत्य का अंगार !
जिसके ही लिए
यह आज तक अविश्रांत
लालायित रहा है
पीड़ितों भूले हुओं का
जागता संसार !
मोचन शोक,
दुख हततेज,
गिर रही है भंगिमा
माया विभेदन,
दीखती अभिनव-किरण
1950

(26) आज देखा है

आज देखा है
मनुज को ज़िन्दगी से जूझते,
संघर्ष करते !
वंचना की टूटती चट्टान की आवाज़
कानों ने सुनी है,
और पैरों को हुआ महसूस
धरती हिल रही है !
आज मन भी
दे रहा निश्चय गवाही
दुःख-पूर्णा-रात काली
अब क्षितिज पर गिर रही है !
भूमि जननी को हुआ कुछ भास
उसकी आस का संसार
नूतन अंकुरों का
उग रहा अंबार !
सूखे वृक्ष के आ पास
बहती वायु कुछ रुक
कह रही संदेश ऐसा

जो नया,
बिलकुल नया है !
सुन जिसे खग डाल का
अब चोंच अपनी खोलने को
हो रहा आतुर,
प्रफुल्लित,
फड़फड़ाकर कर पर थकित !
छतनार यह काला धुआँ
अब दीखता हलका
नहीं गाढ़ा अँधेरा है
वही कल का !
1951

(27) मुझे भरोसा है

मैं क़ैद पड़ा हूँ आज
अँधेरी दीवारों में;
दीवारें-
जिनमें कहते हैं
रहती क़ैद हवा है,
रहता क़ैद प्रकाश !
जहाँ कि केवल फैला
सन्नाटे का राज !
पर, मैं तो अनुभव करता हूँ
बेरोक हवा का,
आँखों से देखा करता हूँ
लक्ष-लक्ष ज्योतिर्मय-पिण्डों को,
मुझको तो
खूब सुनायी देती हैं
मेरे साथी मनुजों के
चलते, बढ़ते, लड़ते
क़दमों की आवाज़ !
मेरे साथी मनुजों के

अभियानों के गानों की
अभियानों के बाजों की
आवाज़ !

मुझे भरोसा है
मेरे साथी आकर
कारा के ताले तोड़ेंगे,
जन-द्रोही सत्ता का
ऊँचा गर्वीला मस्तक फोड़ेंगे !

इंसान नहीं फिर कुचला जाएगा,
इंसान नहीं फिर
इच्छाओं का खेल बनाया जाएगा !
1951

(28) मुख को छिपाती रही

धुआँ ही धुआँ है,
नगर आज सारा नहाता हुआ है !

अँगीठी जली हैं
व चूल्हे जले हैं,
विहग
बाल-बच्चों से मिलने चले हैं !

निकट खाँसती है
छिपी एक नारी
मृदुल भव्य लगती कभी थी,
बनी थी
किसी की विमल प्राण प्यारी !

उसी की शक्ल अब
धुएँ में सराबोर है !

और मुख की ललाई
अँधेरी-अँधेरी निगाहों में खोयी !

जिसे ज़िन्दगी से
न कोई शिकायत रही अब,
व जिसके लिए
है न दुनिया
भरी स्वप्न मधु से
लजाती हुयी नत !

अनेकों बरस से
धुएँ में नहाती रही है !
कि गंगा व यमुना-सा
आँसू का दरिया
बहाती रही है !
फटे जीर्ण दामन में
मुख को छिपाती रही है !

मगर अब चमकता है
पूरब से आशा का सूरज,
कि आती है गाती किरन,
मिटेगी यह निश्चय ही
दुख की शिकन !

1951

(29) नया समाज

करवटें बदल रहा समाज,
आज आ रहा है लोकराज !

ध्वस्त सर्व जीर्ण-शीर्ण साज़,
धूल चूमते अनेक ताज !

आ रही मनुष्यता नवीन,
दानवी प्रवृत्तियाँ विलीन !

अंधकार हो रहा है दूर;
खंड-खंड और चूर-चूर !

रश्मियों ने भर दिया प्रकाश,
ज़िन्दगी को मिल गयी है आश।

चल पड़ा है कारवाँ सप्राण
शक्तिवान, संगठित, महान !

रेत-सा यह उड़ रहा विरोध,
मार्ग हो रहा सरल सुबोध;

बढ़ रहा प्रबल प्रगति-प्रसार,
बिजलियों सदृश चमक अपार !

देख काल दब गया विशाल,
आग जल उठी है लाल-लाल !

उठ रहा नया गरज पहाड़,
मध्य जो वह खा गया पछाड़ !

पिस गया गला-सड़ा पुराण,
बन रहा नवीन प्राणवान !

गूँजता विहान-नव्य-गान;
मुक्त औ' विरामहीन तान !

1949

(30) युगान्तर

आँधी उठी है समुन्दर किनारे
बढ़ती सतत कुछ न सोचे-विचारे,
लहरें उमड़तीं बिना शक्ति हारे
रफ़्तार यह तो समय की !

मानव निकलते चले आ रहे हैं,
उन्मत्त हो गीत नव गा रहे हैं,
रंगीन बादल बिखर छा रहे हैं !
झंकार यह तो समय की !

जर्जर इमारत गिरी डगमगाकर,
आमूल विष-वृक्ष गिरता धरा पर,
बहता पिघल पूर्ण प्राचीन पत्थर,
है मार यह तो समय की !

रोड़े बिछे थे हज़ारों डगर में
नौका कभी भी न डोली भँवर में,
बढ़ती गयी व्यक्ति-झंझा समर में
पतवार यह तो समय की !

इंसान लेता नयी आज करवट,
सम्मुख नयन के उठा है नया पट,
गूँजी जगत में युगान्तर की आहट,
ललकार यह तो समय की !

1950

(31) छलना

आज सपनों की
नहीं मैं बात करता हूँ !
चाँद-सी तुमको समझकर

अब न रह-रह कर
विरह में आह भरता हूँ !

नहीं है
रुग्ण मन के
प्यार का उन्माद बाक़ी,
अब न आँखों में सतत
यह झिलमिलाती
तुम्हारे रूप की झाँकी !

कि मैंने आज
जीवित सत्य की
तसवीर देखी है,
जगत की ज़िन्दगी की
एक व्याकुल दर्द की
तसवीर देखी है !
किसी मासूम की उर-वेदना
बन धार आँसू की
धरा पर गिर रही है,
और चारों ओर है जिसके
अँधेरे की घटा,
जा रूठ बैठी है
सबेरे की छटा !

उसको मनाने के लिए अब
मैं हज़ारों गीत गाऊँगा,
अँधेरे को हटाने के लिए
नव ज्योति प्राणों में सजाऊँगा !

न जब तक
सृष्टि के प्रत्येक उपवन में
बसन्ती प्यार छाएगा,

न जब तक
मुसकराहट का नया साम्राज्य
धरती पर उतर कर जगमगाएगा,
कि तब तक
पास आने तक न दूँगा
याद जीवन में तुम्हारी !

क्योंकि तुम
कर्तव्य से संसार का मुख मोड़ देती हो !
हज़ारों के
सरल शुभ-भावनाओं से भरे उर तोड़ देती हो !
1952

(32) मत कहो

आज भय की बात मुझसे मत कहो,
आज बहकी बात मुझसे मत कहो !

प्राण में तूफ़ान-से अरमान हैं,
कंठ में नव-मुक्ति के नव-गान हैं !

ज्वार तन में स्वस्थ यौवन का बहा,
नष्ट हों बंधन, सबल उर ने कहा !

है तरुण की साधना, गतिरोध क्या ?
है तरुण की चेतना, अवरोध क्या ?

द्वंद्व भीषण, है चुनाती सामने,
बीज भावी क्रान्ति बोती सामने !

बद्ध प्रतिपग पर समस्त समाज है;
आग में तपना सभी को आज है !
आज जन-जन को शिथिलता छोड़ना,

है नहीं कर्त्तव्य से मुख मोड़ना !

इस लगन की अग्नि से जर्जर जले
रक्त की प्रति बूँद की सौगन्ध ले

प्राण का उत्सर्ग करना है तुम्हें,
विश्व भर में प्यार भरना है तुम्हें !

धर्म मानव का बसाना है तुम्हें,
कर्म जीवन का दिखाना है तुम्हें !

मर्म प्राणों का बताना है तुम्हें,
ज्योति से निज, तम मिटाना है तुम्हें !

विश्व नव-संस्कृति प्रगति पर बढ़ चला,
भ्रष्ट जीवन मिट समय के संग गला !

काल की गति, भाग्य का दर्शन मरण,
आज हैं प्रत्येक स्वर के नव-चरण !

जीर्णता पर हँस रही है नव्यता,
खिल रहीं कलियाँ भ्रमर को मधु बता !

ध्वंस के अंतिम विजन-पथ पर लहर,
सृष्टि के आरम्भ के जाग्रत-प्रहर !

जागरण है, जागते ही तुम रहो,
नींद में खोये हुए अब मत बहो !

आज भय की बात मुझसे मत कहो,
आज बहकी बात मुझसे मत कहो !
1950

(33) नया युग

ओ ! मनुजता की
करुण, निस्पंद बुझती ज्योति
मेरे स्नेह से भर
प्रज्ज्वलित हो जा !
निविड़-तम-आवरण सब
विश्व-व्यापी जागरण में
आ सहज खो जा !

हिमालय-सी
भुजाओं में भरी है शक्ति
जन-जन रोक देंगे आँधियों को,
फेंक देंगे दूर
बढ़ती ज्वार की लहरें !

नयी विकसित
युगों की साधना की फूटती आभा,
नयी पुलकित
युगों की चेतना की जागती आशा !

दलित, नत, भग्न ढूहों से
उठी है आज
नव-निर्माण की दृढ़ प्रेरणा !
ध्रुव सत्य
होगी कल्पना साकार !
अभिनव वेग से
संसार का कण-कण
नया जीवन, नया यौवन, लहू नूतन,
सुदृढ़तम शक्ति का
संचार पाएगा !

नया युग यह
प्रखर दिनकर सरीखा ही नहीं,
पर, है पहुँच आगे बड़ी इसकी
घने फैले हुए जंगल
भयानक मत्त 'एवर-ग्रीन',
भूतल ठोस के नीचे,
अतल जल के
जहाँ बस है नहीं रवि का
वहाँ तक है
नये युग के विचारों का
अथक संग्राम !

कैसे बच सकोगे
ओ पलायन के पुजारी !
आज अपनी बुद्धि की हर गाँठ को
लो खोल,
बढ़कर आँक लो
नूतन सजग युग का समझकर मोल !
1950

(34) पदचाप

पड़ रहे नूतन क़दम
फ़ौलाद-से दृढ़,
और छोटी पड़ रही छाया
नये युग आदमी की आज !
धरती सुन रही पदचाप
अभिनव ज़िन्दगी की !
बज रही झंकार,
मुखरित हो रहा संसार,
नव-नव शक्ति का संचार !

परिवर्तन !

बदलती एक के उपरान्त
सुन्दरतर
जगत् की प्रति निमिष तसवीर,
घटती जा रही है पीर,
जागी आदमी की आज तो
सोयी हुई तक़दीर !

रुक गया
मेरे जिगर का दर्द,
बरसों का उमड़ता
नैन का यह नीर !
गीले नेत्र करुणा-पूर्ण
तुझको देखते विश्वास से दृढ़तर,
यही आशा लगाये हैं
कि जब यह उठ रहा परदा पुराना
तब नया ही दृश्य आएगा,
कि पहले से कहीं खुशहाल
दुनिया को दिखाएगा !
1949

(35) भोर का आह्वान

खुल रही आँखें
नयी इस ज़िन्दगी के भोर में !
उठ रहा
उठते दिवाकर संग जन-समुदाय,
भर कर भावना बहुजन हिताय !

अंतर से निकलती आ रही हैं
विश्व के कल्याण की
काली अँधेरी रात के तारों सरीखी,
एक के उपरान्त अगणित शृंखला-सी
नव्य-जीवन की सुनहरी आब-सी

स्वर्गिक दुआएँ !

देख ली है आज
नयनों ने नये युग की धधकती आग,
जिसकी उड़ रहीं चिनगारियाँ
हर ग्राम-वन-सागर-नगर के व्योम में !

उस घास की गंजी सरीखा
जो लपट से ग्रस्त धू-धू जल रही है,
ध्वस्त होता जा रहा
छल, झूठ, आडम्बर !

कि जिसके वक्ष पर यह हो रहा है
रोशनी-सा
दौड़ता अभिनव-किरण-सा आज मन्वंतर !
कि विद्युत वेग भी पीछे
लरज कर रह गया,
लाखों हरीकेनी हवाएँ तक
ठिठक कर रह गयीं;
लाखों उबलते भूमि के ज्वालामुखी तक
जम गये,
बह न पाया एक पग भी देखकर लावा !
गगन के फट गये बादल
व खंडित हो गयी सारी गरज !
भव का भयानकतम भविष्यत् भी
भरे भय भग गया !

विश्वास है
यह अब न आएगा कभी,
ऐसा ग्रहण फिर
ग्रस न पाएगा कभी
जन-चेतना के सूर्य को !

रे आज सदियों रुद्ध जनता-कंठ
सहसा खुल गया
संसार के इस शोर में !
खुल रही आँखें
नयी इस ज़िन्दगी के भोर में !
1950

(36) निरापद

नयी रोशनी है,
नयी रोशनी है !
निरापद हुआ आज जीवन,
निराशा पुरावृत विसर्जन !

विषादित-युगों की निशा भी गगन से
अँधेरा उठाकर भगी इस जलन से।

महाबल विपुल अब भुजाएँ उठाकर
विरोधी सभी ताक़तों को
गरजकर बिगड़ क्रुद्ध
ललकारता है !
गुनाहों के पर्वत
पिघल कर धँसे जा रहे हैं !
(सुमन शुष्क उपवन में
खिलते चले जा रहे हैं !)

बदलते जगत पर
पुरातन गलित नीति
हरगिज़
नहीं थोपनी है !
नयी रोशनी है !
1949

(37) सुर्खियाँ निहार लो!

नये विचार लो !
समाज की गिरी दशा सुधार लो,
सुधार लो !

रुका प्रवाह फिर बहे,
सप्राण गीति-स्वर कहे,
हृदय अपार स्नेह-धन
भरे उठें असंख्य जन,
प्रभात को धरा जगो पुकार लो,
पुकार लो !

वतन सुसंगठित रहे,
न एक जन दमित रहे,
न भूख-प्यास शेष हो,
बना नवीन वेश हो,
समय बहाल, सुर्खियाँ निहार लो,
निहार लो !

विभोर हर्ष-धार में,
सफ़ेद लाल प्यार में,
बहो, बहो, बहो, बहो !
बनी नयी कुटीर है, विहार लो,
विहार लो !
1950

(38) युग-परिवर्तन

नये प्रभात की प्रथम किरण
विलोक मुसकरा रहा गगन !

इधर-उधर सभी जगह

नवीन ज़िन्दगी के फूल खिल गये,
सिहर-सिहर कि झूम-झूम
एक दूसरे को चूम-चूम मिल गये !

धूल बन गया पहाड़ अंधकार का,
अटूट वेग है ज़मीन पर
नयी बयार का !

कि साथ-साथ उठ रहे चरण,
कि साथ-साथ गिर रहे चरण !
नये प्रभात की नयी बहार बीच
जगमगा उठा गगन !
कि झिलमिला उठा गगन !

उर्वरा धरा सुहाग पा गयी,
शरीर में हरी निखार आ गयी !

निहार लो उभार रूप का
पड़ा है सिर्फ़
रेशमी महीन आवरण
अतेज घूप का !

बिजलियों ने कर लिया शयन,
हहरती आँधियाँ पड़ीं शरण,
विकास का सशक्त काफ़िला नवीन
कर रहा सुदृढ़ भवन-सृजन !
बेशरम रुके खड़े हैं राह पर,
कि कापुरुष के कंठ से
निकल रहा कराह-स्वर,
सभीत दुर्बलों के बंद हैं नयन,
व मोच खा गये चरण !
1950

(39) नयी संस्कृति

युग-रात्रि
निश्चय
विश्व के प्रत्येक नभ से मिट गयी !
अभिनव प्रखर-स्वर्णिम-किरण बन
झिलमिलाती आ रही
संस्कृति नयी !

सामने जिसके
विरोधी शक्तियाँ तम की बिखरती जा रहीं,
पर, ये विरोधी शक्तियाँ
    कोई थकी जर्जर नहीं,
किन्तु;
इनसे जूझने का आ गया अवसर !

यही वह है समय
जब बल नया पाता विजय !

हमला ज़रूरी है,
कि देशों, जातियों, वर्गों सभी की
यह परस्पर की
मिटाना आज दूरी है !

इसी के ही लिए
प्राचीन-नूतन द्वन्द्व की आवाज़ है,
प्राचीन जो म्रियमाण,
जिसका आज
विशृंखल हुआ सब साज़ है !
जिसकी रोशनी सारी
नये ने छीन ली,
और जिसके हाथ से निकला

समस्त समाज है !
बस, पास केवल एक धुँधली याद है,
जिसका तड़पता शेष यह उन्माद है
‘बीते युगों में हम सुखी थे;
किंतु अब रथ सभ्यता का
तीव्र गति से बढ़
पतन-पथ पर
जगत का नाश करने हो रहा आतुर !’

हमें अब जान लेना है
विनाशी तत्त्व घातक हैं वही
जो आज यह झूठा तिमिर करते विनिर्मित,
और रक्षक-दीप बनने का
विफल गीदड़ सरीखा स्वाँग भरते हैं !
कि धोखे से उदर अपना
भरा हर रोज़ करते हैं।
भला ऐसे मनुज
क्या लोक के कुछ काम आते हैं ?
नयी हर बात से मुख मोड़ लेते हैं
समय के साथ चलना भूल जाते हैं !

नज़र से
क्रीट, बेबीलोन के खण्डहर गुज़रते हैं !
बहाना है न उनको देखकर आँसू,
न उनकी अब प्रशंसा के
हज़ारों गीत गाने हैं !
नहीं बीते युगों के दिन बुलाने हैं !
नया युग आ रहा है जो
उसी के मार्ग में हमको
बिछाने फूल हैं कोमल,
उसी के मार्ग को हमको
बनाना है सरल !

जिससे नयी संस्कृति-लता के कुंज में
हम सब ख़ुशी का
गा सकें नूतन तराना !
भूलकर दूख-दर्द
जीवन का पुराना !
1950

40) गंगा बहाओ

आज ऊसर भूमि पर गंगा बहाओ !

उच्च दृढ़ पाषाण गिर-गिर कर चटकते,
रेत के कण नग्न धरती पर चमकते,
अग्नि की लहरें हवा में बह रही हैं;
रूप घन का शांतिमय जग को दिखाओ !

त्रस्त नत मानव प्रकम्पित पात से झर,
झुक गये सब आततायी के चरण पर,
थूक ठोकर नाश दुख निर्मम मरण पर;
आत्म-धन उत्सर्ग की ध्रुव लौ जगाओ !

बह चुकी हैं ख़ून की नदियाँ, बिरानी
भू हुई, सत् की असत् ने कुछ न मानी,
और फूटा भय-ग्रसित-रक्तिम-सबेरा,
सूर्य पर छाये हुए बादल हटाओ !
1950

(41) नयी रेखाएँ

इन धुँधली-धुँधली रेखाओं
पर, फिर से चित्र बनाओ मत !

दुनिया पहले से बदल गयी,
आभा फैली है नयी-नयी,

यह रूप पुराना, नहीं-नहीं !
आँखों से ओझल है कल की
संस्कृति की गंगा का पानी,
टूटी-टूटी-सी लगती है
गत वैभव की शेष कहानी,
जिसमें मन से झूठी, कल्पित
बातों को सोच मिलाओ मत !

पहले के बादल बरस चुके,
अब तो खाली सब थके-रुके,
यह गरज बरसने वाली कब ?
नव-अंकुर फूट रहे रज से
भर कर जीवन की हरियाली,
निश्चय है, फूटेगी नभ से
जनयुग के जीवन की लाली,
निस्सार, मिटा, जर्जर, खोया
फिर से आज अतीत बुलाओ मत !

1948

(42) भविष्य के निर्माताओ!

जिन सपनों को साकार करोगे तुम
उन पर मुझको विश्वास बड़ा,
मैं देख रहा हूँ
क़दम-क़दम पर आज तुम्हारे
स्वागत को युग का इन्सान खड़ा !
जिसके फ़ौलादी हाथों में
हँसते फूलों की ख़ुशबू वाली माला है,
जिसने जीवन की सारी
जड़ता और निराशा का
वारा-न्यारा कर डाला है !
वह माला वह इन्सान
तुम्हारे उर पर डालेगा;

क्योंकि तुम्हारा वक्षस्थल
जन-जन की पीड़ा से बोझिल है,
क्योंकि तुम्हारे फ़ौलादी तन का
मख़मल जैसा मन
युग-व्यापी क्रन्दन से
हो-हो उठता चंचल है !
तुम ही हो जो
इन फूलों की क़ीमत समझोगे,
फिर सारी दुनिया में
हँसते फूलों का उपवन
नभ के नीचे लहराएगा !
मानव फूलों को प्यार करेगा,
अपनी 'श्रद्धा' का शृंगार करेगा,
बच्चों को चूमेगा,
उनके साथ रोज़
हरे लॉन पर 'घोड़ा-घोड़ा' खेलेगा !
नयनों में आँसू तो आएँगे
पर, वे बेहद मीठे होंगे !
मरघट की आग जलेगी यों ही
पर, उसमें न किसी के
अरमान अधूरे होंगे !
जैसे अब मिलना दुर्लभ है
'ईश' जगत में
वैसे ही तब भी होगा,
पर, हमको-तुमको
(सच मानो !)
उसकी इतनी चिन्ता ना होगी !
उसका और हमारा अन्तर
निश्चय ही मिट जाएगा,
जिस दिन मानव का सपना
सच हो जाएगा !

1953

(43) मेघ-गीत

उमड़ते-गरजते चले आ रहे घन
घिरा व्योम सारा कि बहता प्रभंजन
अँधेरी उभरती अवनि पर निशा-सी
घटाएँ सुहानी उड़ीं दे निमन्त्रण !

कि बरसो जलद रे जलन पर निरंतर
तपी और झुलसी विजन-भूमि दिन भर,
करो शान्त प्रत्येक कण आज शीतल
हरी हो, भरी हो प्रकृति नव्य सुन्दर !

झड़ी पर, झड़ी पर, झड़ी पर, झड़ी हो,
जगत मंच पर सौम्य शोभा खड़ी हो,
गगन से झरो मेघ ओ! आज रिमझिम,
बरस लो सतत, मोतियों-सी लड़ी हो !

हवा के झकोरे उड़ा गंध-पानी
मिटा दी सभी उष्णता की निशानी,
नहाती दिवारें नयी औ' पुरानी
डगर में कहीं स्रोत चंचल रवानी !

कृषक ने पसीने बहाये नहीं थे,
नवल बीज भू पर उगाये नहीं थे,
सृजन-पंथ पर हल न आये अभी थे
खिले औ' पके फल न खाये कहीं थे !

दृगों को उठा कर, गगन में अड़ा कर
प्रतीक्षा तुम्हारी सतत लौ लगा कर
हृदय से, श्रवण से, नयन से व तन से,
घिरो घन, उड़ो घन घुमड़कर जगत पर !

अजब हो छटा बिजलियाँ चमचमाएँ,
अँधेरा सघन, लुप्त हो सब दिशाएँ
भरन पर, भरन पर सुना राग नूतन
नया प्रेम का मुक्त-संदेश छाये !

विजन शुष्क आँचल हरा हो, हरा हो,
जवानी भरी हो सुहागिन धरा हो,
चपलता बिछलती, सरलता शरमती,
नयन स्नेहमय ज्योति, जीवन भरा हो !

1950

(44) बरगद

स्तब्धता सुनसान
पथ वीरान,
सीमाहीन नीला व्योम !
मटमैली धरा पर
वृक्ष बरगद का झुका
मानों कि है प्राचीनता साक्षात् !

निर्बल
वृद्ध-सा जर्जर शिथिल,
उखड़ी हुई साँसें,
जड़ें भू पर बिछी हैं
और गिरने के मरण-क्षण पर
भयंकर स्वप्न ने
कंपित किया झकझोर कर
भय की बना मुद्रा
खड़ा यों कर दिया !

उड़कर धूल कहना चाहती है
'ओ गगनचुम्बी !
गिरो

पूरी न आकांक्षा हुई,
आकर मिलो मुझसे
विवश होकर धराशायी !
न जाना मूल्य लघुता का
किया उपहास !’

जड़ के पास
खंडित औ’ कुरूपा
जो रँगा सिन्दूर से
हनुमान-सा पाषाण
टिक कर गोद में बैठा
कि जिसकी अर्चना करते
मनुज कितने
नमन हो परिक्रमा करते
व आधी रात को आ
श्वान जिसको चाटते !
1959

(43) कवि

युग बदलेगा कवि के प्राणों के स्वर से,
प्रतिध्वनि आएगी उस स्वर की घर-घर से !

कवि का स्वर सामूहिक जनता का स्वर है,
उसकी वाणी आकर्षक और निडर है !

जिससे दृढ़-राज्य पलट जाया करते हैं,
शोषक अन्यायी भय खाया करते हैं !

उसके आवाहन पर, नत शोषित पीड़ित,
नूतन बल धारण कर होते एकत्रित !

जो आकाश हिला देते हुंकारों से

दुख-दुर्ग ढहा देते तीव्र प्रहारों से !

कवि के पीछे इतिहास सदा चलता है,
ज्वाला में रवि से बढ़कर कवि जलता है !

कवि निर्मम युग-संघर्षों में जीता है,
कवि है जो शिव से बढ़कर विष पीता है !

उर-उर में जो भाव-लहरियों की धड़कन,
मूक प्रतीक्षा-रत प्रिय भटकी गति बन-बन,

स्नेह भरा जो आँखों में माँ की निश्छल,
लहराया करता कवि के दिल में प्रतिपल !

खेतों में जो बिरहा गाया करता है,
या कि मिलन का गीत सुनाया करता है,

उसके भीतर छिपा हुआ है कवि का मन,
कवि है जो पाषाणों में भरता जीवन!
1953

8

मधुरिमा

रचना-काल सन् 1945-1957

प्रकाशन सन् 1959

कविताएँ

1 आदमी
2 कौन हो तुम ?
3 तुम
4 दर्शन
5 मत बनो कठोर
6 किरण
7 चाँद से
8 चाँद सोता है
9 कौन कहता है
10 शिशिर की रात (1)
11 शिशिर की रात (2)
12 बसंत
13 छा गए बादल
14 आ गया सावन
15 बरखा की रात
16 मेघ और शशि
17 निवेदन
18 चाँदनी में
19 ज्योत्स्ना
20 चाँद और तुम
21 बुरा क्या किया था
22 कल रात
23 जाओ नहीं
24 विश्वास
25 प्रतीक्षा
26 कोई शिकायत नहीं
27 विरह का गान
28 दीप जला दो
29 धन्यवाद
30 नींद
31 पूनम
32 झलकता रूप
33 समर्पण
34 बड़ा कठिन
35 कलानिधि
36 आकुल-अन्तर
37 मेरा चाँद ...
38 अमावस की अँधेरी में
39 मिल गये थे

40 ग्रहण
41 विवशता
42 ओ चाँद
43 आकर्षण
44 मृग-तृष्णा
45 चाँद और पत्थर (1)
46 चाँद और पत्थर (2)
47 न जाने क्यों ...
48 स्मृति की रेखाएँ
49 साथ
50 चाँ, मेरे प्यार !
51 दुराव
52 यह न समझो
53 तुमसे मिलना तो
54 आत्म-स्वीकृति
55 प्रेय

●

(1) आदमी

गोद पाकर, कौन जो सोया नहीं ?
होश किसने प्यार में खोया नहीं ?
आदमी, पर है वही जो दर्द को
प्राण में रख, एक पल रोया नहीं !

1957

(2) कौन हो तुम

कौन हो तुम, चिर-प्रतीक्षा-रत
सजग, आधी अँधेरी रात में ?

उड़ रहे हैं घन तिमिर के
सृष्टि के इस छोर से उस छोर तक,
मूक इस वातावरण को
देखते नभ के सितारे एकटक,
कौन हो तुम, जागतीं जो इन
सितारों के घने संघात में ?

जल रहा यह दीप किसका,
ज्योति अभिनव ले कुटी के द्वार पर,
पंथ पर आलोक अपना
दूर तक बिखरा रहा विस्तार भर,
कौन है यह दीप ? जलता जो
अकेला, तीव्र गतिमय वात में ?

कर रहा है आज कोई
बार-बार प्रहार मन की बीन पर,
स्नेह काले लोचनों से
युग-कपोलों पर रहा रह-रह बिखर,
कौन-सी ऐसी व्यथा है,
रात में जगते हुए जलजात में ?

1948

(3) तुम

सचमुच, तुम कितनी भोली हो !

संकेत तुम्हारे नहीं समझ में आते,
मधु-भाव हृदय के ज्ञात नहीं हो पाते,
तुम तो अपने में ही डूबी
नभ-परियों की हमजोली हो !

तुम एक घड़ी भी ठहर नहीं पाती हो,
फिर भी जाने क्यों मन में बस जाती हो,
वायु बसंती बन, मंथर-गति
से जंगल-जंगल डोली हो !

1955

(4) दर्शन

मन, दर्शन करने से बंधन में बँध जाता है !

यह दर्शन सपनों में भी कर
देता सोये उर को चंचल,
लखकर शीशे-सी नव आभा
आँखें पड़ती हैं फिसल-फिसल,
नयनों का घूँघट गिर जाता, मन भर आता है !

यह दर्शन केवल क्षण भर का
बिखरा देता भोली शबनम,
बन जाता है त्योहार सजल
पीड़ामय सिसकी का मातम,
इसका वेग प्रखर आँधी से होड़ लगाता है !

यह दर्शन उज्वल स्मृति में ही
देता अंतर के तार हिला,
नीरस जीवन के उपवन में

देता है अनगिन फूल खिला,
इसका कंपन मीठा-मीठा गीत सुनाता है !

यह दर्शन प्रतिदिन-प्रतिक्षण का
लगता न कभी उर को भारी,
दिन में सोने, निशि में चाँदी
की सजती रहती फुलवारी,
यह नयनों का जीवन सार्थक पूर्ण बनाता है ।

यह दर्शन मूक लकीरों का
बरसा देता सावन के घन,
गहरे काले तम के पट पर
खिंच जाती बिजली की तड़पन,
इसका आना उर-घाटी में ज्योति जगाता है !

1950

(5) मत बनो कठोर

इन बड़री-बड़री अँखियों से
मत देखो प्रिय ! यों मेरी ओर !

इतने आकर्षण की छाया
जल-से अंतर पर मत डालो,
मैं पैरों पड़ता हूँ, अपनी
रूप-प्रभा को दूर हटालो,
अथवा युग नयनों में भर लो
फेंक रेशमी किरनों की डोर !

और न मेरे मन की धरती
पर सुख-स्नेह-सुधा बरसाओ,
यह ठीक नहीं, वश में करके
प्राणों को ऐसे तरसाओ,
छू लेने भर दो, कुसुमों से

अंकित जगमग आँचल का छोर !

इस सुषमा की बरखा में तो
पथ भूल रहा है भीगा मन,
तुम उत्तरदायी, यदि सीमा
तोड़े यह उमड़ा नद-यौवन,
आ जाओ ना कुछ और निकट
यों इतनी तो मत बनो कठोर !

1950

(6) किरण

उतरी रही प्रमोद से
अबोध चंद्र की किरण !

समस्त सृष्टि सुप्त देखकर,
रजत अरोक व्योम-मार्ग पर
समेट अंग-अंग
वेगवान रख रही चरण !

विमुक्त खूँदती रही निडर
हरेक गाँव, घर, गली, नगर,
न शांत रह सकी ज़रा
न कर सकी निशा-शयन !

1952

(7) चाँद से

कपोलों को तुम्हारे चूम लूंगा,
मुसकराओ ना !

तुम्हारे पास माना रूप का आगार है,
सुनयनों में बसा सुख-स्वप्न का संसार है,
अनावृत अप्सराएँ नृत्य करती हैं जहाँ,

नवेली तारिकाएँ ज्योति भरती हैं जहाँ,

उन्हीं के सामने जाओ ; यहाँ पर,
झलमलाओ ना !

बड़ी खामोश आहट है तुम्हारे पैर की
तभी तो चोर बनकर आसमाँ की सैर की,
खुली ज्यों ही पड़ी चादर सुनहली धूप की
न छिप पायी किरन कोई तुम्हारे रूप की,

बहाना अंग ढकने का लचर इतना
बनाओ ना !

युगों से देखता हूँ तुम बड़े ही मौन हो
बताओ तो ज़रा, मैं पूछता हूँ कौन हो ?
न पाओगे कभी जा दृष्टि से यों भाग कर
तुम्हारा धन गया है आज आँगन में बिखर,

रुको पथ बीच, चुपके से मुझे उर में
बसाओ ना !

1950

(8) चाँद सोता है !

सितारों से सजी चादर बिछाए चाँद सोता है !

बड़ा निश्िंचत है तन से,
बड़ा निश्िंचत है मन से,
बड़ा निश्िंचत जीवन से,

किसी के प्यार का आँचल दबााए चाँद सोता है !
नयी सब भावनाएँ हैं,
नयी सब कल्पनाएँ हैं,

नयी सब वासनाएँ हैं,

हृदय में स्वप्न की दुनिया बसाए चाँद सोता है !

सुखद हर साँस है जिसकी,
मधुर हर आस है जिसकी,
सनातन प्यास है जिसकी,

विभा को वक्ष पर अपने लिटाए चाँद सोता है !

1953

(9) कौन कहता है ...

कौन कहता है कि मेरे चाँद में जीवन नहीं है ?

चाँद मेरा खूब हँसता, मुसकराता है,
खेलता है और फिर छिप दूर जाता है,
कौन कहता है कि मेरे चाँद में धड़कन नहीं है ?

रात भर यह भी किसी की याद करता है,
देखना, अक्सर विरह में आह भरता है,
कौन कहता है कि मेरे चाँद में यौवन नहीं है ?

है सदा करता रहा संसार को शीतल,
है सदा करता रहा वर्षा-सुधा अविरल,
कौन कहता है कि मेरे चाँद में चन्दन नहीं है ?

1954

शिशिर की रात (1)

शिशिर-ऋतु-राज, राका-रश्मियाँ चंचल !

कि फैला दिग-दिगन्तों में सघन कुहरा,
सजल कण-कण कि मानों प्यार आ उतरा,

प्रकृति-संगीत-स्वर बस गूँजता अविरल !

शिथिल तरु-डाल, सम्पुट फूल-पाँखुड़ियाँ,
रहीं चुपचाप गिर ये ओस की लड़ियाँ,
धवल हैं सब दिशाएँ झूमती उज्वल !

गगन के वक्ष पर कुछ टिमटिमाते हैं,
सितारे जो नहीं फूले समाते हैं,
सुखद प्रत्येक उर है नृत्यमय-झलमल !

धरा आकाश एकाकार आलिंगन,
प्रणय के तार पर यौवन भरा गायन,
फिसलता नीलवर्णी शून्य में आँचल !

विहग तरु पर अकेला कूक देता है,
किसी की याद में बस हूक देता है,
नयन प्रिय-पंथ पर प्रतिपल बिछे निर्मल !

सबेरा है कहाँ ? संसार सब सोया,
पवन सुनसान में बहता हुआ खोया,
अभी हैं स्वप्न के पल शेष कुछ कोमल !
1948

(11) शिशिर की रात (2)

स्तब्ध, गीली, शुभ्र धुँधली रात है,
बह रहा शीतल शिशिर का वात है !

छा रहा कुहरा धुआँ-सा दूर तक,
छिप गया है चन्द्रमा का नूर तक !

हो गयी फीकी नशीली ज्योत्स्ना,
व्योम मानों शीत का बंदी बना !

घोंसलों से मूक चिड़ियाँ झाँकतीं,
नींद में डूबी हुईं कुछ आँकतीं !

शांत धरती पर खड़ी ज्यों भित्तियाँ
जम गयी प्रत्येक तरु की पत्तियाँ !

आज चंचल धूल भी चुपचाप है,
उच्च टूटे शृंग पर हिमताप है,

बर्फ़ का तूफ़ान आएगा अभी,
श्वेत चादर-सी बिछाएगा अभी !

बन्द कर लो ये झरोखे द्वार सब,
आज तो उमड़े हृदय का प्यार सब !

रात लम्बी है सबेरा दूर है,
क्या करें, यह मन बड़ा मजबूर है !

इस तरह अब और शरमाओ नहीं,
पास आओ, दूर यों जाओ नहीं !

रूठने का आज यह अवसर नहीं
ज़िन्दगी इस रात से बेहतर नहीं !
1947

(12) बसंत

अंग-अंग में उमंग आज तो पिया,
बसंत आ गया !

दूर खेत मुसकरा रहे हरे-हरे,
डोलती बयार नव-सुगंध को धरे,
गा रहे विहग नवीन भावना भरे,

प्राण ! आज तो विशुद्ध भाव प्यार का
हृदय समा गया !

खिल गया अनेक फूल-पात से चमन ;
झूम-झूम मौन गीत गा रहा गगन,
यह लजा रही उषा कि पर्व है मिलन,
आ गया समय बहार का, विहार का
नया नया नया !

1953

(13) छा गये बादल

तुम्हारी मद भरी मुसकान लख कर आ गये बादल !
तुम्हारे नैन प्यासे देखकर, ये छा गये बादल !

नवेली ! पायलों से बज रही झंकार है झन-झन,
सदा यह झूमता प्रतिपल सुघड़ सुन्दर सुकोमल तन,
असह है यह तुम्हारे रूप का अब और आकर्षण,
नयन बंदी हुए जिसको निमिष भर देखकर केवल !

चमकता शुभ्र गोरे-लाल फैले भाल पर झूमर,
तुम्हारे केश घुँघराले हवा में उड़ रहे फर-फर,
झुके जाते स्वयं के भार से प्रति अंग नव-सुन्दर,
फिसलता जा रहा है वक्ष पर से फूल-सा आँचल !

तुम्हारा गान सुन संसार सब बेहोश हो जाता,
बड़े सुख की नयी दुनिया बसा निश्चिंत सो जाता,
तुम्हारी रागिनी में डूब मन-जलयान खो जाता,
बहाती हो अजानी स्नेह की धारा सरल छल-छल !

अमिट है याद से मेरी तुम्हारा वह मिलन-पनघट,
विकल होकर सुमुखि ! मैंने कहा जब, 'हो बड़ी नटखट !'
उसी पल खुल गया था यह तुम्हारी लाज का घूँघट,

बड़े मनहर व मादक थे तुम्हारे बोल वे निश्छल !

1949

(14) आ गया सावन

प्रीति के प्रिय गीत गाओ !

आ गया सावन सजीवन,
हैं बरसते प्यार के घन !
दूर खेतों में सरस सुन्दर
मुसकराती तृप्त हरियाली,
डाल पर कलियाँ हँसी चंचल
छलछलाकर रस भरी प्याली,
तुम न जाओ दूर मुझसे
प्राण में आकर समाओ !

वायु शीतल बह रही है,
कान में कुछ कह रही है !
स्वर मिलन-संगीत खग-उपवन,
भू-हृदय में हो रही धड़कन,
सब खिँचे जाते जगत के कण,
मूक मनहर सृष्टि-आकर्षण,
भावना ले द्रोह की तुम
यों विमुख होकर न जाओ !

1949

(15) बरखा की रात

दिशाएँ खो गयीं तम में
धरा का व्योम से चुपचाप आलिंगन !

धरा ऐसी कि जिसने नव
सितारों से जड़ित साड़ी उतारी है,
सिहर कर गौर-वर्णी स्वस्थ

बाहें गोद में आने पसारी हैं,
समायी जा रही बनकर
सुहागिन, मुग्ध मन है और बेसुध तन !

कि लहरों के उठे शीतल
उरोजों पर अजाना मन मचलता है,
चतुर्दिक घुल रहा उन्माद
छवि पर छा रही निश्छल सरलता है,
खिँचे जाते हृदय के तार
अगणित स्वर्ग-सम अविराम आकर्षण !

बुझाने छटपटाती प्यास
युग-युग की, हुआ अनमोल यह संगम,
जलद नभ से विरह-ज्वाला
बुझाने को सघन होकर झरे झमझम,
निरन्तर बह रहा है स्रोत
जीवन का, उमड़ता आज है यौवन !

1949

(16) मेघ और शशि

नभ में मेघों के टुकड़ों से
खेल रहा शशि आँख-मिचौनी !

शशिसुन्दर, मोहक-आकर्षक
गोरे-गोरे अंगों वाला,
इतना तन्मय जाने क्यों, जब
मेघ-असुन्दर काला-काला ?
 है क्या कोई जो बतलाए
 कैसे आज हुई अनहोनी !

दौड़ रहे हैं दोनों अविरल,
पर ज्यों ही बादल हँसता है,

तब उन्मादी-सा शशि घन की
युग बाहों में जा फँसता है,
 कैसे कह सकता है कोई
 किसको अपनी बाज़ी खोनी !

दोनों ने भग कर चरणों से
लगभग नभ को नाप लिया है,
थोड़ा-थोड़ा दोनों ने ही
आज लिया है और दिया है,
 रे रहे अजर शशि-घन की यह
 युग-युग जोड़ी लोनी-लोनी !

1954

(17) निवेदन

सुप्त उर के तार फिर से
प्राण ! आकर झनझना दो !

नभ-अवनि में शुभ्र फैली चाँदनी,
मूक है खोयी हुई-सी यामिनी ;
और कितनी तुम मनोहर कामिनी !
 आज तो बन्दी बनाकर
 क्षणिक उन्मादी बनादो !

मद भरे अरुणाभ हैं सुन्दर अधर,
नैन हिरनी से कहीं निश्छल सरल,

देह ‘विद्युत, काँच, जल-सी’ श्वेत है,
डालियों-सी बाहु मांसल तव नवल,
 आज जीवन से भरा नव
 गीत मीठा गुनगुना दो !

स्वर्ग से सुन्दर कहीं संसार है,

हर दिशा से हो रही झंकार है,
विश्व को यह प्रेम री स्वीकार है,
    चिर-प्रतीक्षित-मधु-मिलन
    त्योहार संगिनि ! अब मना लो !

1949

(18) चाँदनी में

नयी चाँदनी में नहालो, नहालो !

नयन बंद कर आज सोये सितारे,
भगे जा रहे कुछ किनारे-किनारे,
खुले बंध मन के हमारे-तुम्हारे,
    किरण-सेज पर प्रिय ! प्रणय-निशि मनालो !

झकोरे मिलन-गीत गाने लगे हैं,
मधुर-स्वर हृदय को हिलाने लगे हैं,
नये स्वप्न फिर आज छाने लगे हैं,
    हँसो और संकोच-परदा हटालो !

जवानी लहर कर जगी मुसकरायी,
सिमटती बिखरती चली पास आयी,
बड़े मान-मनुहार भी साथ लायी
        सुमुखि ! अब स्वयं को न बरबस सँभालो !

भ्रमर को किसी ने गले से लगाया,
सरस-गंध मय अंक में भर सुलाया,
बड़े प्यार से चूम झूले झुलाया,
        लजीली ! मुझे भी न बन्दी बना लो !

1948

(19) ज्योत्स्ना

मेरे पास यह आती हुई इतरा रही है ज्योत्स्ना,
मुझको देख एकाकी, सतत भरमा रही है ज्योत्स्ना !

धीरे से मुँडेरों पर उतरती आ रही है ज्योत्स्ना,
प्यारा और मीठा गीत, रानी गा रही है ज्योत्स्ना !

मेरे टीन पर, छत पर बिखर कर फैलती है ज्योत्स्ना,
मेरे हाथ से, मुख से निडर बन खेलती है ज्योत्स्ना !

सोने भी नहीं देती, स्वयं भी जागती है ज्योत्स्ना,
होती जब सुबह, जाने कहाँ जा भागती है ज्योत्स्ना !

मेरे से न जाने क्यों नहीं यह बोलती है ज्योत्स्ना,
प्राणों में अनोखा प्यार-अमृत घोलती है ज्योत्स्ना !

1954

(20) चाँद और तुम

अपनी छत पर खड़ी-खड़ी तुम
भी देख रही होगी चाँद !

शीतल किरनों की बरखा में
तुम भी आज नहाती होगी,
बड़री अँखियों से देख-देख
आकुल मन बहलाती होगी,
और अनायास कभी कुछ-कुछ
अस्फुट-स्वर में गाती होगी,
    तुमको भी रह-रह कर आती
    होगी आज किसी की याद !

अपने से ही मधु-बातें तुम

भी करने लग जाती होगी,
बाहें फैला अनजान किसी
को भरने लग जाती होगी,
फिर अपने इस पागलपन पर
अधरों में मुसकाती होगी,
    तुममें भी उन मिलन-पलों का
    छाया होगा री उन्माद !

तुम भी हलका करती होगी
यह भारी-भारी-सा जीवन,
तुम भी मुखरित करती होगी
यह सूना-सूना-सा यौवन,
खोयी-खोयी-सी व्याकुल बन
तुम चाह रही होगी बंधन,
    तुमने भी इस पल सपनों की
    दुनिया की होगी आबाद !

1951

(21) बुरा क्या किया था ?

मैंने, बताओ, तुम्हारा बुरा क्या किया था ?

    कोमल कली-सी अधूरी खिली थीं,
    जब तुम प्रथम भूल मुझसे मिली थीं,
    अनुभव मुझे भी नया ही नया था,
अपना, तभी तो, सदा को तुम्हें कर लिया था !

    जीवन-गगन में अँधेरी निशा थी,
    दोनों भ्रमित थे कि खोयी दिशा थी,
    जब मैं अकेला खड़ा था विकल बन
    पाया तुम्हें प्राण करते समर्पण,
उस क्षण युगों का जुड़ा प्यार सारा दिया था !

    तुमने उठा हाथ रोका नहीं था,
    निश्चिंत थीं ; क्योंकि धोखा नहीं था,
    बंदी गयीं बन बिना कुछ कहे ही
    वरदान मानों मिला हो सदेही,
कितना सरल मूक अनजान पागल हिया था !

1951

(22) कल रात

कल रात ज़रा भी तो नींद नहीं आयी !

सूनी कुटिया थी मेरी सूना था नभ का आँगन,
केवल जगता था मैं, या जगता विधु का भावुक मन ;
प्रतिपल बढ़ती थीं ज्यों ही जिसकी किरणें बाहें बन,
बढ़ती जाती थी रह-रह जाग्रत अन्तर की धड़कन ;
        ना मद से बोझिल ये अँखियाँ अलसायीं !

स्वयं निकल कर स्वप्न-कथा की बढ़ती थीं घटनाएँ,
उड़ जाती थीं शैया पर नव-परिमल-अन्ध-हवाएँ,
लहर-लहर कर अँगड़ा कर जागीं सुप्त भावनाएँ,
निशि भर पड़ी रहीं चुपचुप मन को अपने बहलाए,
        उन्मादी-सी बन न क्षणिक भी शरमायीं !

बिखर कभी कच वक्षस्थल पर उड़-उड़ लहराते थे,
या कि कभी सज-गुँथ कर दो वेणी लट बन जाते थे,
कमल-वृंत पर कभी भ्रमर अस्फुट राग सुनाते थे,
कोमल पत्ते बार-बार फूलों को सहलाते थे,
        बनती मिटती रही अजानी परछाईं !
        सच, कल रात ज़रा भी नींद नहीं आयी !

1951

(23) जाओ नहीं

बीतते जाते
पहर पर आ पहर
पर, रात ! तुम जाओ नहीं,
जाओ नहीं !

प्यार करता हूँ तुम्हें
तुम पूछ लो झिलमिल सितारों से
कि जागा हूँ
उनींदे नींद से बोझिल पलक ले ;
क्योंकि मेरी भावना
तव रूप में लय हो गयी है !

मैं वही हूँ
एक दिन जिसको समर्पित था
किसी के रूप का धन
सामने तेरे !

तभी तो प्यार करता हूँ तुझे जी भर,
कि तूने ज़िन्दगी के साथ मेरे
वह पिया है रूप का आसव
कि जिसका ही नशा
चहुँ और छाया दीखता है !

इसलिए
ठहरो अभी, ओ रात !
तुम जाओ नहीं
जाओ नहीं !
1949

(24) विश्वास

यह विश्वास मुझे है
एक दिवस तुम
मेरी प्यासी आँखों के सम्मुख
मधु-घट लेकर आओगी !
बदली बनकर छाओगी !
दरवाज़े को
गोरे-गोरे दर्पन-से हाथों से
खोल खड़ी हो जाओगी !
भोले लाल कपोलों पर
लज्जा के रँग भर-भर लाओगी !
नयनों की अनबोली भाषा में
जाने क्या-क्या कह जाओगी !

ज्यों चंदा को देख
चकोर विहँसने लगता है,
ज्यों ऊषा के आने पर
कमलों का दल खिलने लगता है,
वैसे ही देख तुम्हें कोई
चंचल हो जाएगा !
बीते मीठे सपनों की
दुनिया में खो जाएगा !

फिर इंगित से पास बुलाएगा,
धीरे से पूछेगा
'कैसी हो,
कब आयीं ?'
तुम क्या उत्तर दोगी ?
शायद, दो लम्बी आहें भर लोगी
आँखों पर आँचल धर लोगी !
1953

(25) प्रतीक्षा

आज तक मैंने तुम्हारी
चाहना का गीत गाया,
और रह-रह कर तड़पती
याद में जीवन बिताया,
क्या प्रतीक्षा में सदा ही
मैं व्यथा सहता रहूंगा ?

स्वप्न में देखा कभी यदि,
कह उठा, 'बस आज आये' !
दिवस बीता, रात बीती
पर, न सुख के मेघ छाये,
कल्पना में ही सदा क्या
मैं विकल बहता रहूंगा ?

प्राण उन्मन, भग्न जीवन,
मूक मेरी आज वाणी,
याद आती है विगत युग
की वही मीठी कहानी,
क्या अभावों की कथा ही
मैं सदा कहता रहूंगा ?

1945

(26) कोई शिकायत नहीं

तुमसे मुझे आज कोई शिकायत नहीं है !

विवश बन, नयन भेद सारा छिपाये हुए हैं,
मिलन-चित्र मोहक हृदय में समाये हुए हैं,
बहुत सोचता हूँ, बहुत सोचता हूँ,
कहीं दूर का पथ नया खोजता हूँ,
पर, भूलने की शुभे ! एक आदत नहीं है !

कभी देख लेता मधुर स्वप्न जाने-अजाने,
उसी के नशे में तुम्हें पास लगता बुलाने,
बुरा क्या अगर मुसकराता रहूँ मैं,
नयी एक दुनिया बसाता रहूँ मैं ?
सच, यह किसी भी तरह की शरारत नहीं है !

अकेली लता को कभी वृक्ष लेता लगा उर,
कमलिनी थकी-सी भ्रमर को सुखद अंक में भर,
सिमटती गयी, चुप लजाती रही जब,
बड़ी याद मुझको सताती रही तब,
सौन्दर्य जग का किसी की अमानत नहीं है !

1950

(27) विरह का गान

मिल गया तुमको, तुम्हारा प्यार !

ज़िन्दगी मेरी अमा की रात है,
एक पश्चाताप की ही बात है,
आज मेरा घर हुआ वीरान है,
मूक होठों पर विरह का गान है ;
पर, ख़ुशी है
मिल गया तुमको मधुर संसार !

भाग्य में मेरे बदा था शून्य-जल
मधु-सुधा भी बन गया तीखा गरल,
पास की पहचान अब कड़ियाँ बनीं,
वेदनामय गत मिलन-घड़ियाँ बनीं,
पर, ख़ुशी है
मिल गया तुमको नया शृंगार !

ज़िन्दगी में आँधियाँ ही आँधियाँ,
स्नेह बिन कब तक जलेगा यह दिया !

आ रहा बढ़ता भयावह ज्वार है,
हाथ में आकर छिना पतवार है,
पर, ख़ुशी है
मिल गया तुमको सबल आधार !

1951

(28) दीप जला दो !

मेरे सूने घर में
युग-युग का अँधियारा छाया है
जीवन-ज्योति जली थीसपना है;
तुममें जितना स्नेह समाया है
तब समझूंगामेरा अपना है
यदि ऊने अन्तर में तुम दीप जला दो !

कल्पों से यह जीवन क्या ? मरुथल
बना हुआ है जग का ऊष्मा-घर,
एकाकी पथ, फिर उस पर मृग-जल
तब मानूंगा तुममें रस-सागर
यदि मेरे ऊसर-मन को नहला दो !

पल-पल पर आना-जाना रहता
केवल रेतीले तूफ़ानों का,
बनता क्या ? जो है वह भी ढहता ;
समझूंगा मूल्य तुम्हारे गानों का
यदि सूखे सर-से मन को बहला दो !

सम्भव हो न सकेगा जीवित रहना
पल भर भी तन-मन मोम-लता का
है बस मूक प्रहारों को सहना ;
समझूंगा जादू कोमलता का
यदि पाहन-उर के व्रण सहला दो !

1955

(29) धन्यवाद

दो क्षण सम्पुट अधरों को जो
तुमने दी खिलते शतदल-सी मुसकान ;
कृपा तुम्हारी, धन्यवाद !

जग की डाल-डाल पर छाया
था मधु-ऋतु का वैभव,
वसुधा के कन-कन ने खेली
थी जब होली अभिनव,
मेरे उर के मूक गगन को
गुंजित कर जो तुमने गाया मधु-गान ;
कृपा तुम्हारी, धन्यवाद !

पूनम की शीतल किरनों में
वन-प्रांतर डूब गये,
जब जन-जन मन में सपनों के
जलते थे दीप नये,
युग-युग के अंधकार में तुम
मेरे लाये जो जगमग स्वर्ण-विहान ;
कृपा तुम्हारी, धन्यवाद !

जब प्रणयोन्माद लिए बजती
मुरली मनुहारों की,
घर-घर से प्रतिध्वनियाँ आतीं
गीतों-झनकारों की,
दो क्षण को ही जो तुमने आ
बसा दिया मेरा अंतर-घर वीरान ;
कृपा तुम्हारी, धन्यवाद !

आ जाती जीवन-प्यार लिए
जब संध्या की बेला,

हर चौराहे पर लग जाता
अभिसारों का मेला,
दुनिया के लांछन से सोया
जगा दिया खंडित फिर मेरा अभिमान ;
कृपा तुम्हारी धन्यवाद !

1955

(30) नींद

आज मेरे लोचनों में
नींद घिरती आ रही है !

व्योम से आती हुई रजनी
मृदुल माँ-वत् करों से थपकियाँ देती,
नव-सितारों से जड़ित आँचल
बिछा है, आँख सुख की झपकियाँ लेतीं,
चन्द्र-मुख से सित-सुधा की
धार झरती आ रही है !

सुन रहा हूँ स्नेह का मधुमय
तुम्हारा गीत कुसुमों और डालों से,
प्रति-ध्वनित है आज पत्थर से
वही संगीत सरिता और नालों से
रागिनी उर में सुखद मद
भाव भरती जा रही है !

बन्द पलकों के हुए पट, पर
दिखायी दे रहा यह, पी रहा हूँ मैं,
नव पयोधर से किसी का दूध
शीतल, भान भी है यह, कहाँ हूँ मैं,
स्वस्थ मांसल देह-छाया
झूम गिरती आ रही है !

1949

(31) पूनम

पीपल के पीछे से चुपचुप
झाँक रहा चंदा पूनम का !
इतना भोला है कि उसे यह
ज्ञात न, कोई देख रहा है,
चारों ओर नयी आभा से
पूरित शीतल सिंधु बहा है,
दूर क्षितिज पर शंकाकुल मुख
गोरा-गोरा शशि का दमका !

इतना व्याकुल है कि अभी से
खोल द्वार नभ के, भरमाया,
काली रात न होने भी दी
सबके सम्मुख बाहर आया,
और न जाने रोक रहा क्यों
गिरने वाला परदा तम का !

1949

(32) झलकता रूप

शशि पर घूँघट बादल का है !

घूँघट इतना झीना जिसमें
है शरमाया मुख प्रतिबिम्बित,
दो पागल कजरारी अँखियाँ
संधान किये नभ पर अंकित,
सीमित रह न सका किंचित भी
उभर-उभर मधु-घट छलका है !

इतना छलका कि सितारों-से
छींटे उड़-उड़ कर फैल गये,
मानों उर से बाहर होकर

बिखरे हों अगणित भाव नये,
या स्वर्ण-अलंकृत छोर गगन
में फहराते आँचल का है !

1950

(33) समर्पण

ओ राकापति ! देख तुम्हें सब
रूप-गर्विताएँ लज्जित हैं !

सौन्दर्य सभी का फीका-सा
लगता है, जब तुम आते हो,
अपनी शीतल नव चाँदी-सी
आभा ले नभ में छाते हो,
जाने कितना स्वर्गिक-वैभव
अंगों में, उर में संचित है !

केवल मुसकान-किरन पर ही
जग का सब वैभव न्यौछावर,
बलिहारी जाता है कवि का
तन-मन, ओ नभवासी सुंदर !
देख तुम्हें जग के कन-कन का
अंतर-आनंद असीमित है !

1954

(34) बड़ा कठिन

हिमकर से आँख चुराना बड़ा कठिन !

यह जब अपनी नव-आभा को
सूने नभ में फैलाता है,
तब भावुक अंतर का सागर
सुख-लहरों से भर जाता है,
पर, पल भर भी

हिमकर को पास बुलाना बड़ा कठिन !

चंचल अँखियाँ जब निंदिया के
पलने पर चढ़ सो जाती हैं,
जब क्षण भर में तन-मन की धन-
राशि परायी हो जाती है,
तब भी, सचमुच
हिमकर की याद भुलाना बड़ा कठिन !

1950

(35) कलानिधि

रे मूक कलानिधि के मुख पर
मोहक सपनों की छाया है !

दिन में सोता है
निशि भर जगता है,
जिससे अलसाया खोया-खोया-सा
हरदम लगता है,
पहचान नहीं पाओगे तुम
कुछ अद्‌भुत स्वर्गिक माया है !

पहले बढ़ता, पर
फिर घट जाता है,
जिससे पल भर भी यह नहीं किसी के
वश में आता है,
समझें क्या ? यह अस्सी घाटों
का पानी पीकर आया है !

1950

(36) आकुल-अन्तर

आज है बेचैन मन
कुछ बात करने को प्रिये !

एकरस इतनी विलंबित
मौनता अब हो रही है भार,
जब सतत लहरा रहा शीतल
रुपहला स्निग्ध पारावार,
हो रहा बेचैन मन
उन्मुक्त मिलने को प्रिये !

शुष्क नीरस सृष्टि में जब
छा गये चारों तरफ़ नव बौर,
भाग्य में मेरे अरे केवल
लिखा है क्या अकेला ठौर ?
हो रहा बेचैन मन
कुछ भेद कहने को प्रिये !

1950

(37) मेरा चाँद...

मेरा चाँद मुझसे दूर है !

सूने व्योम में
रोती अकेली रात है,
चारों ओर से
तम की लगी बरसात है,
इसलिए ही आज
निष्प्रभ हर कुमुद का नूर है !

किस एकांत में
जाकर तड़पता है सरल,
भय है प्राण को
भारी, न पीले रे गरल,
क्योंकि ऊँचे भव्य
घर में क़ैद है, मजबूर है !

ये आँखें क्षितिज
पर आश से, विश्वास से
निश्छल देखतीं
हर रश्मि को उल्लास से,
क्योंकि यह है सत्य
उसमें चाह मिलन ज़रूर है !

1949

(38) अमावस की अँधेरी में

नभ के किन परदों के पीछे आज छिपा है चाँद ?

मैं पूछ रहा हूँ तुमसे ओ
नीरव जलने वाले तारो !
मैं पूछ रहा हूँ तुमसे ओ
अविरल बहने वाली धारो !

सागर की किस गहराई में आज छिपा है चाँद ?
नभ के किन परदों के पीछे आज छिपा है चाँद ?

मैं पूछ रहा हूँ तुमसे ओ
मन्थर मुक्त हवा के झोंको !
जिसने चाँद चुराया मेरा
उसको सत्वर भगकर रोको !

नयनों से दूर बहुत जाकर आज छिपा है चाँद ?
नभ के किन परदों के पीछे आज छिपा है चाँद ?

मैं पूछ रहा हूँ तुमसे ओ
तरुओ ! पहरेदार हज़ारों,
चुपचाप खड़े हो क्यों ? अपने
पूरे स्वर से नाम पुकारो !
दूर कहीं मेरी दुनिया से आज छिपा है चाँद !

नभ के किन परदों के पीछे आज छिपा है चाँद ?

1949

(39) मिल गये थे हम

ज़िन्दगी की राह पर जब दो-क्षणों को
मिल गये थे हम,
एकरसता मौनता का बोझ भारी
हो गया था कम !

उड़ गया छाया थकावट का, उदासी
का धुआँ गहरा,
पा तुम्हें मन-प्राण मरुथल पर उठी थी
रस-लहर लहरा !

पर, बनी मंज़िल मनुज की क्या कभी भी
राह जीवन की ?
क्या सदा को छा सकीं नभ में घटाएँ
सुखद सावन की ?

आज जाना है विरल बहुमूल्य कितनी
प्यार की घड़ियाँ,
गूँजती हैं आज भी रह-रह तुम्हारे
गीत की कड़ियाँ !

1957

(40) ग्रहण

आज मेरे सरल चाँद को किस
ग्रहण ने ग्रसा है ?
आज कैसी विपद में विहंगम
गगन का फँसा है ?

मौन वातावरण में बिखरतीं

उदासीन किरणें,
रंग बदला कि मानों उठी हो
घटा घोर घिरने !

दूर का यह अँधेरा सघन अब
निकट आ रहा है,
गीत दुख का, बड़ी वेदना का
पवन गा रहा है !

अश्रु से भर खड़े मूक बनकर
सभी तो सितारे,
हो व्यथित यह सतत सोचते हैं
कि किसको पुकारें ?

साथ हूँ मैं सुधाधर तुम्हारे
मुझे दुख बताओ,
हूँ तुम्हारा, रहूँगा तुम्हारा
न कुछ भी छिपाओ !

1949

(41) विवशता

दूर गगन से देख रहा शशि !

जगते-जगते बीत गयी है
आधी रात,
पर, पूरी हो न सकी अस्फुट
मन की बात,
भरे नयन से देख रहा शशि !

ऊपर से तो शांत दिखायी
देते प्राण,
पर, भीतर क़ैद बड़ा यौवन

का तूफ़ान,
विरह-जलन से देख रहा शशि !

सारे नभ में बिखरी पड़ती
है मुसकान,
पर, कितना लाचार अधूरा
है अरमान,
बोझिल तन से देख रहा शशि !
1951

(42) ओ चाँद !

ओ चाँद सलोने ! अम्बर से
क्या कभी न नीचे उतरोगे ?

बंद करो उन्मत्त ! चकोरी
का और चुराना भोला मन,
दूर करो नभ के जादूगर !
मचली लहरों का पागलपन,
शांत करो जिज्ञासा कवि के
उर में बढ़ने वाली प्रतिक्षण,
ओ चाँद अनोखे ! जीवन का
चुप-चुप कब भेद बताओगे ?

शायद न मिटेगी युग-युग तक
यह दिन-दिन बढ़ती सुन्दरता,
शायद न मिटेगी युग-युग तक
यह निज चरणों की निर्भरता,
शायद न मिटेगी युग-युग तक
यौवन की अल्हड़ चंचलता,
ओ चाँद अकेले ! बाहों में
क्या कभी मुझे भी भर लोगे ?
1951

(43) आकर्षण

जितने पास आता हूँ तुम्हारे इंदु
उतने ही सँभल तुम दूर जाते हो !

पहले ही बता दो ना
पहुँचने क्या नहीं दोगे ?
पहले ही अरे कह दो
कि मेरा प्यार ना लोगे !
जितना चाहता हूँ ओ ! तुम्हें राकेश
उतने ही बदल तुम दूर जाते हो !

आओगे न क्या मेरे
कभी एकांत जीवन में ?
क्या अच्छा नहीं लगता
विहँसना स्नेह-बंधन में ?
जितना चाहता हूँ बाँधना ओ सोम !
उतने बन विकल तुम दूर जाते हो !

ऊपर से खड़े होकर
निरंतर देखते क्यों हो ?
किरणें रेशमी अपनी
सँजो कर फेंकते क्यों हो ?
जैसे ही अकिंचन मैं उलझता भूल
वैसे ही सरल ! तुम दूर जाते हो !
1951

(44) मृग-तृष्णा

चाँद से जो प्यार करता है
वह अकेला ज़िन्दगी भर आह भरता है !

ऐसा नहीं होता अगर,

तो क्यों कहा जाता कलंकित रे ?
मधुकर सरीखा उर, तभी
तो कर न सकता स्नेह सीमित रे !

चाँद से जो प्यार करता है
नष्ट वह अपना मधुर संसार करता है !

ऐसा नहीं होता अगर,
तो दूर क्यों इंसान से रहता ?
नीरस हृदय है ; इसलिए
ना बात मीठी भूलकर कहता,

चाँद से जो प्यार करता है
कंटकों को जानकर गलहार करता है
1952

(45) चाँद और पत्थर (1)

चाँद तुम पत्थर-हृदय हो !

व्यर्थ तुमसे प्यार करना,
व्यर्थ है मनुहार करना,
व्यर्थ जीवन की सुकोमल भावनाओं को जगाना,
जब न तुम किंचित सदय हो !

व्यर्थ तुमसे बात करना,
और काली रात करना,
प्राणघाती, छल भरा, झूठा तुम्हारा स्नेह बंधन ;
चाहते अपनी विजय हो !

फेंक कर सित डोर गुमसुम,
देखते इस ओर क्या तुम ?
स्वर्ग के सम्राट, नभ-स्वच्छन्द-वासी ! रे तुम्हें क्या ?

सृष्टि हो चाहे प्रलय हो !

सत्य आकर्षण नहीं है,
सत्य मधु-वर्षण नहीं है,
सत्य शीतल रुपहली मुसकान अधरों की नहीं है !
तुम स्वयं में आज लय हो
1952

(46) चाँद और पत्थर (2)

चाँद तुम पत्थर नहीं हो !

है तुम्हारा भी हृदय कोमल,
स्नेह उमड़ा जा रहा छल-छल
हो बड़े भावुक, बड़े चंचल,
इसलिए, मेरे निकट हो,
प्राण से बाहर नहीं हो !

राह अपनी चल रहे हो तुम,
आँधियों में पल रहे हो तुम,
शीत में हँस गल रहे हो तुम
इसलिए कहना ग़लत है
'तुम मनुज-सहचर नहीं हो !'

हो किसी के प्यार बन्धन में,
हो किसी की आश जीवन में,
गीत के स्वर हो किसी मन में,
सोच इतना ही मुझे है
हाय, धरती पर नहीं हो !

1953

(47) न जाने क्यों...

मुझे मालूम है यह चाँद मुझको मिल नहीं सकता,
कभी भी भूलकर स्वर्गिक-महल से हिल नहीं सकता,
चरण इसके सदा आकाशगामी हैं,
रुपहले-लोक का यह मात्र हामी है,
न जाने क्यों उसे फिर भी हृदय से प्यार करता हूँ !
न जाने क्यों उसी की याद बारंबार करता हूँ !

मुझे मालूम है यह चाँद बाहों में न आएगा,
कभी भी भूलकर मुझको न प्राणों में समाएगा,
अमर है कल्पना का लोक रे इसका,
नहीं पाना किसी के हाथ के बस का,
न जाने क्यों उसी पर व्यर्थ का अधिकार करता हूँ !
न जाने क्यों उसे फिर भी हृदय से प्यार करता हूँ !

मुझे मालूम है यह चाँद कैसे भी न बोलेगा,
कभी भी भूलकर अपने न मन की गाँठ खोलेगा,
सरल इसके सुनयनों की न भाषा है,
समझने में निराशा ही निराशा है,
न जाने क्यों उसी से भावना-व्यापार करता हूँ !
न जाने क्यों उसे फिर भी हृदय से प्यार करता हूँ !

मुझे मालूम है यह चाँद वैभव का पुजारी है,
बड़ी मनहर गुलाबी स्वप्न दुनिया का विहारी है,
वे मेरे पंथ पर काँटे बिछे अगणित,
अभावों की हवाएँ आ गरजती नित,
न जाने क्यों उसी से राह का शृंगार करता हूँ !
न जाने क्यों उसे फिर भी हृदय से प्यार करता हूँ !

1953

(48) स्मृति की रेखाएँ

प्राणों में प्रिय ! आज समाया
अभिराम तुम्हारा आकर्षण !

जो कभी न मिटने पाएगा,
जो कभी न घटने पाएगा,
तीव्र प्रलोभन के भी सम्मुख
जो कभी न हटने पाएगा,
शाश्वत केवल यह, जगती में
मनहर प्राण ! तुम्हारा बंधन !

यदि भरलूँ मुसकान तुम्हारी,
और चुरा लूँ आभा प्यारी,
तो निश्चय ही बन जाएगी
मेरी दुनिया जग से न्यारी,
तुमने ही आज किया मेरा
जगमग सूना जीवन-आँगन !

अनुराग तुम्हारा झर-झर कर
जाए न कभी मुझसे बाहर,
साथ तुम्हारे रहने के दिन
सच, याद रहेंगे जीवन भर,
स्नेह भरे उर से करता हूँ
मैं सतत तुम्हारा अभिनन्दन !

1954

(49) साथ

कभी क्या चाँद का भी साथ छूटा है ?

रहेंगे हम जहाँ जाकर
वहाँ यह चाँद भी होगा,

हमारे प्राण का जीवित
वहाँ उन्माद भी होगा,
बताओ तो किसी ने आज तक क्या
चाँदनी का रूप लूटा है ?

हमारे साथ यह सुख के
दिनों में मुसकराएगा,
दुखी यह देखकर हमको
पिघल आँसू बहाएगा,
बिछुड़कर दूर रहने से कभी भी
प्यार का बंधन न टूटा है !

हमारी नींद में आ यह
मधुर सपने सजाएगा,
थके तन पर बड़े शीतल
पवन से थपथपाएगा,
निरंतर एक गति से ही बहेगा
स्नेह का जब स्रोत फूटा है !

1953

(50) चाँद, मेरे प्यार!

ओ चाँद !
तुमको देखकर
बरबस न जाने क्यों
किसी मासूम मुखड़े की
बड़ी ही याद आती है !
फिर यह बात मन में बैठ जाती है
कि शायद तुम वही हो
चाँद, मेरे प्यार !

यह वही मुख है
जिसे मैंने हज़ारों बार चूमा है

कभी हलके,
कभी मदहोश 'आदम' की तरह !
यह वही मुख है
हज़ारों बार मेरे सामने जो मुसकराया है,
कभी बेहद लजाया है !

हुआ क्या आज यदि
मेरी पहुँच से दूर हो,
मुख पर तुम्हारे अजनबी छाया
चिढ़ाने का नवीन सरूर हो ;
जैसे कि फिर तो पास आना ही नहीं !

क्या कह रहे हो ?
ज़ोर से बोलो
'कि पहचाना नहीं !'
हुश !
प्यार के नखरे
न ये अच्छे तुम्हारे,
अब पकड़ना ही पड़ेगा
पहुँच किरणों की सहारे,
देखता हूँ और कितनी दूर भागोगे,
मुझे मालूम है जी,
तुम बिना इसके न मानोगे !

1955

(51) दुराव

चाँद को छिप-छिप झरोखों से सदा देखा किया
और अपनी इस तरह आँखें चुरायीं चाँद से !

चाँद को झूठे सँदेसे लिख सदा भेजा किया
और दिल की इस तरह बातें छिपायीं चाँद से !

चाँद को देखा तभी मैं मुसकराया जानकर
और उर का यों दबाया दर्द अपना चाँद से !

लाख कोशिश की मगर मैं चाँद को समझा नहीं
और पल भर कह न पाया स्वर्ण-सपना चाँद से !

भूल करता ही गया अच्छा-बुरा सोचा नहीं
प्यार कर बैठा किसी के, चिर-धरोहर, चाँद से !

युग गुज़रते जा रहे ख़ामोश, मैं भी मौन हूँ ;
क्योंकि अब बातें करूँ किस आसरे पर चाँद से !
1954

(52) यह न समझो

यह न समझो कूल मुझको मिल गया
आज भी जीवन-सरित मझधार में हूँ !

प्यार मुझको धार से
धार के हर वार से,
प्यार है बजते हुए
हर लहर के तार से,
यह न समझो घर सुरक्षित मिल गया
आज भी उघरे हुए संसार में हूँ !

प्यार भूले गान से,
प्यार हत अरमान से,
ज़िन्दगी में हर क़दम
हर नये तूफ़ान से,
यह न समझो इंद्र-उपवन मिल गया
आज भी वीरान में, पतझार में हूँ !
खोजता हूँ नव-किरन
रुपहला जगमग गगन,

चाहता हूँ देखना
एक प्यारा-सा सपन,
यह न समझो चाँद मुझको मिल गया
आज भी चारों तरफ़ अँधियार में हूँ !
1955

(53) तुमसे मिलना तो...

तुमने मिलना तो अब दूभर !

मूक प्रतीक्षा में कितने युग बीत गये,
चिर प्यासी आँखों के बादल रीत गये,
एकाकी जीवन के निर्जन
पथ पर केवल पतझर-पतझर !

देख रहा हूँ, सभी अपरिचित और नये,
वे जाने-पहचाने सपने कहाँ गये ?
ढूँढ़ चुका अविराम सजग
कोना-कोना, जल-थल-अम्बर !
1956

(54) आत्म-स्वीकृति

तुम इतनी पागल नहीं बनो !

जिसको समझ रही हो प्रतिपल
सरल-तरल भावों का निर्झर,
वह बोझिल दर्द भरा वंचित
चिर एकाकी सूना ऊसर,
अपने मन को वश में रक्खो
यों इतनी दुर्बल नहीं बनो !

क्यों बड़ी लगन से देख रहीं
यह पत्थर है, मोम नहीं है,

अरी चकोरी ! सुबह-सुबह का
सूरज है, यह सोम नहीं है,
यों किसी अपरिचित के सम्मुख
तुम इतनी निश्छल नहीं बनो !

यह मेघ नहीं सुखकर शीतल
केवल उष्ण धुएँ का बादल,
इसमें नादान अरे ! रह-रह
खोजो मत जीवन का संबल,
सब मृग-जल है, इसके पीछे
तुम इतनी चंचल नहीं बनो !

बड़े जतन से सजा रही हो
तुम जिस उजड़ी फुलवारी को,
कैसे लहराये वह, समझो
तनिक ह्रदय की लाचारी को,
अश्रु-भरी आँखों में बसकर
शोभा का काजल नहीं बनो !

1956

(55) प्रेय

प्यार की जिसको मिली सौगात है
ज़िन्दगी उसकी सजी बारात है !
भाग्यशाली वह ; उसी के ही लिए
सृष्टि में मधुमास है, बरसात है !

1955

9

जिजीविषा

रचना-काल सन् 1947-1956
प्रकाशन सन् 1962

पूज्य पिता जी की पावन-स्मृति में

(1)
तुम गये जगत से रवि-किरणों पर चढ़कर
देकर कभी न भरने वाला सूनापन,
पाने बहुमूल्य तुम्हारी निर्भर छाया
अब तरसेंगे हत-प्राण विकल हो प्रतिक्षण!

(2)
तुम गये कि जग-जीवन से उल्लास गया
लगता जैसे जीवन में कुछ सार नहीं,
नश्वर सब, हर वस्तु परायी है जग की
अपना कहने को अपना घर-बार नहीं!

(3)
हे दुर्भाग्य! पिता को छीन लिया तुमने
पर, मेरा जीवन-विश्वास न छीनो तुम,
चारों ओर दिया भर शीतल गहरा तम
पर, अरुण अनागत की आस न छीनो तुम!

●

कविताएँ

1 हिम्मत न हारो!
2 अप्रतिहत
3 व्यथा
4 संकल्प-विकल्प
5 क्षिप्रा के किनारे
6 न रुकते चरण
7 सहारा
8 जीवन नहीं
9 हमें यह पता है -
10 साथी
11 यह नहीं मंज़िल
12 स्वर-साधना
13 भोर
14 प्राण-दीप
15 नयी किरणें
16 तूफ़ानों का स्वागत
17 दीया जलाओ !
18 परिचय
19 अमिताभ
20 आज की ज़िन्दगी
21 मध्य-वर्ग (चित्र 1)
22 मध्य-वर्ग (चित्र 2)
23 भविष्यत्
24 लेखनी से -
25 मैं कहता हूँ!
26 राही
27 अनुष्ठान
28 पटाक्षेप
29 निश्चय
30 झुकना होगा
31 तुम आज लिख लो
32 बदल कर रहेगा
33 नयी सुबह
34 सावधान
35 नया यौवन
36 जनता
37 जवानों का गीत
38 तसवीरें
39 बहुतेरे

40 पुनर्निर्माण
41 नयी चेतना
42 विनाश-लीला
43 बन्द करो
44 आज
45 मज़लूम
46 श्रमिक
47 मानव-समता का त्योहार
48 ओ मज़दूर-किसानो !
49 अकेला नहीं हूँ
50 जवानी
51 ज्योति-पर्व
52 कवि 'निराला' के प्रति
53 साँझ
54 नयी ज़िन्दगी
55 ज्वार और नाविक
56 जिजीविषा

●

(1) हिम्मत न हारो!

हिम्मत न हारो !
कंटकों के बीच
मन-पाटल खिलेगा एक दिन,
हिम्मत न हारो !

यदि आँधियाँ आएँ तुम्हारे पास
उनसे खेल लो,
जितनी बड़ी चट्टान वे फेंकें तुम्हारी ओर
उसको झेल लो !

तुम तो जानते हो
आजकल बरसात के दिन हैं;
गगन में खलबली है,
दौर-दौरा है घटाओं का,
तुम्हारे सामने अस्तित्व हो उनका
सदाओं का !

लरजती बिजलियाँ;
माना,
तुम्हारे सामने हो खेल
आतिशबाज़ियाँ नाना !
निरंतर राह पर चलते रहोगे तो
तुम्हारा लक्ष्य तुमसे आ मिलेगा एक दिन !
हिम्मत न हारो !
कंटकों के बीच
मन-पाटल खिलेगा एक दिन !
हिम्मत न हारो !

1955

(2) अप्रतिहत

मैं नहीं दुर्भाग्य के सम्मुख झुकूँगा
आज जीवन में हुआ असफल भले ही !

एक पल को साधना की भावना सोयी नहीं,
और जाऊँ हार, ऐसी बात भी कोई नहीं,
मैं नहीं सुनसान राहों पर थकूँगा
दूर, बेहद दूर हो मंज़िल भले ही !

आज छाया है अमावस-सा अँधेरा सब तरफ़,
पर, अभी कल मुसकराएगा सबेरा सब तरफ़,
मैं न मन की पंगु दुविधा में रुकूँगा
पास में चाहे न हो संबल भले ही !

1956

(3) व्यथा

तुम नये युग के तरुण हो,
है नहीं देता तुम्हें शोभा बहाना अश्रु
प्रिय की याद में,
या बेवफ़ाई में !
कि बदली घिर रही है,
वायु मंथर मधु बसंती बह रही है,
चाँदनी आकाश में छिटकी हुई है !

और तुम हो दूर प्रिय से !
या कि प्रिय ने है किया
विश्वासघात कठोर तुमसे !

सरल तुम भावुक हृदय के जीव हो,
दिल में तुम्हारे प्यार है,
अरमान हैं,

है चाहना सुख की,
नयी स्वर्णिम विहँसती ज़िन्दगी के स्वप्न हैं !

पर, आज चकनाचूर वे,
ज्यों गिर पड़ा हो हाथ से
पाषाण पर जा ताप-मापक-यंत्र,
बहते अश्रु पारे के सदृश,
मानो रहा ही अब नहीं
कोई तुम्हारा वश !

न सोचो
दीप बुझता जा रहा है,
और बीती याद का
तीखा, नुकीला शूल
चुभता जा रहा है !

ये कबूतर
जो कि छत पर मौन बैठे हैं
किसी की क्या कभी यों याद करते हैं ?

1952

(4) संकल्प-विकल्प

आज यह कैसी थकावट ?
कर रही प्रति अंग रग-रग को शिथिल !

मन अचेतन भाव-जड़ता पर गया रुक,
ये उनींदे शांत बोझिल नैन भी थक-से गये !

क्यों आज मेरे प्राण का
उच्छ्वास हलका हो रहा है,
गूँजते हैं क्यों नहीं स्वर व्योम में ?

पिघलता जा रहा विश्वास मन का
मोम-सा बन,
और भावी आश भी क्यों दूर तारा-सी
दृष्टि-पथ से हो रही ओझल ?

व जीवन का धरातल
धूल में कंटक छिपाये
राह मेरी कर रहा दुर्गम !

गगन की इन घहरती आँधियों से
आज क्यों यह दीप प्राणों का
उठा रह-रह सहम ?

रे सत्य है,
इतना न हो सकता कभी भ्रम !

भूल जाऊँ ?
या थकावट से शिथिल होकर
नींद की निस्पंद श्वासों की
अनेकों झाड़ियों में
स्वप्न की डोरी बनाकर
    झूल लूँ ?

इस सत्य के सम्मुख
झुकाकर शीश अपना
आत्म-गति को
(रुक रही जो)
    रोक लूँ ?
या
सत्य की हर चाल से
संघर्ष कर लूँ आत्मबल से आज ?
1948

(5) क्षिप्रा के किनारे

लड़खड़ाते पाँव हैं, सूनी डगर
झूम आगे चल रहा हूँ मैं मगर !

चाँदनी नभ में सुखद फैली हुई,
दीपकों की राह में आभा नयी,

दूर हिलता वृक्ष पीपल का, पवन-
प्रति-झकोरे पर, विमूर्छित मूक मन !

झाँकता जिसमें नशीला चाँद है,
छा गया रे कौन-सा उन्माद है ?

आरती के स्वर, रहा घंटा घहर;
उठ रहीं प्रति बार क्षिप्रा में लहर !

पंथ पगडंडी बना मैं चल रहा
मार्ग का अणु-अणु बना संबल रहा !

औरतें गाती रही थीं आ जहाँ
जा रहा था एक मुर्दा भी वहाँ !

श्वान थोड़े-से पड़े थे भोंकते,
नालियों के पास भिक्षुक कोसते,

डालियों पर बैठ उल्लू बोलते,
दूत प्रतिपल ईश के जग डोलते !

साधुओं का है अखाड़ा पास ही
है जिन्हें परमात्मा विश्वास ही ?

और मैं आगे रहा हूँ चल उधर
जीर्ण कुटिया एक प्राणों की जिधर !

लड़खड़ाते पाँव हैं, सूनी डगर !
1948

(6) न रुकते चरण !

अँधेरी निराशा-निशा में
उषा की दमकती न आशा-किरण !

गगन में नहीं अब चमकते सितारे कहीं,
धरा के सभी दूर डूबे किनारे कहीं,
चला जा रहा, पर, सतत बेसहारे कहीं,
विहग उड़ हृदय के सभी आज हारे नहीं,
कठिन कंटकों से भरी राह
दुर्गम, कहीं, पर न रुकते चरण !

उगलती चली पंथ की हर कहानी गरल,
मिटाती चलीं आँधियाँ सब सुरक्षित महल,
सतत, पर प्रगतिवाह-उन्मुक्त-जीवन-सबल,
हुई साधना-प्राण की मम न किंचित विफल,
विरोधी अमंगल समय की
सुलगती प्रखरतम बुझायी जलन !

चमक कर, गरज कर डरातीं घटाएँ अगम,
निरंतर उलझती गयी हर डगर बन विषम,
कि बढ़ता गया घिर धुआँ-सा तिमिर हर क़दम,
व बुझते गये राह-संकेत-दीपक सहम,
प्रलय रात, पर, आज भय से
कहीं डबडबाए न मेरे नयन !
1949

(7) सहारा

नहीं साथ मैं चाहता हूँ तुम्हारा,
भले ही मिटे ज़िन्दगी का सहारा !

जिये यदि किसी की दया माँग
तो क्या जिये ?
कभी भूल चिंता करूंगा न
अपने लिये,
ज़रा भी न अफ़सोस, चाहे बुझे यह
गगन में चमकता अकेला सितारा !

हँसूंगा न जीवित रहूंगा
सफलता बिना,
निखरता मनुज का न जीवन
विफलता बिना,
भरोसा बड़ा ही मुझे है कि बहती
हुई यह रुकेगी नहीं प्राण-धारा !
1954

(8) जीवन नहीं !

जीवन नहीं, जीवन नहीं !

सौभाग्य ही केवल न मन की साध है,
रोना यहाँ दुर्भाग्य पर अपराध है,
यह भूलना
क्षण आपदाओं के महान भविष्य के आभास;
यदि इतना नहीं विश्वास
तो ज़िन्दगी का वह कभी
दर्शन नहीं, दर्शन नहीं !

सपने नयन-आकाश में छाते रहें,

अपने लिए ही गीत हम गाते रहें,
यह भूलना
परमार्थ, सेवा-भावना ही मानवी आधार !
यदि इतना नहीं स्वीकार
तो श्वास तेरी बद्ध, उर
धड़कन नहीं, धड़कन नहीं !

उद्यान में केवल न खिलते फूल हैं,
उड़ती हुई भी प्रति चरण पर धूल है,
यह भूलना
अवरुद्ध बंधन-ग्रस्त जीवन से सदा विद्रोह,
यदि निज प्राण से है मोह
तो शक्ति का उन्माद क्या
यौवन नहीं, यौवन नहीं !

1948

(9) हमें यह पता है

रुकावट हटाते हुए हम चलेंगे,
अँधेरा मिटाते हुए हम चलेंगे,
हमें यह पता है
उजेले में बिजली कभी चमचमाती नहीं है !

सजग रह सतत आज बढ़ते रहेंगे,
इमारत नयी एक गढ़ते रहेंगे,
हमें यह पता है
जवानी मनुज की कभी लड़खड़ाती नहीं है !

ठिठक कर रुकेंगी विरोधी हवाएँ,
फिसल कर गिरेंगी सभी आपदाएँ,
हमें यह पता है
कि हिम्मत की साँसें कभी व्यर्थ जाती नहीं हैं !

1954

(10) साथी

जो जीवन की विपदाओं को
हँस-हँस झेल लिया करते हैं
केवल वे मेरे साथी हैं !

शूल-ग्रस्त, बीहड़, पथरीली
शून्य डगर पर बड़ा अँधेरा,
पर, चलते, नयनों में भर जो
जगमग करता नया सवेरा,
निर्भय बन जीवन और मरण
से जो खेल किया करते हैं
केवल वे मेरे साथी हैं !

जब सिर पर क्रोधित हो-हो कर
गरजा करतीं तेज हवाएँ,
हो जातीं सभी विफल, भावी
की जब आशा-आकांक्षाएँ,
तब जो उस घोर निराशा में
पापड़ बेल लिया करते हैं
केवल वे मेरे साथी हैं !

बाधाओं से टकरा क्षण-भर
जो सीख न पाये हैं रुकना,
मंज़िल पा जाने से पहले
जो जान न पाये हैं थकना,
जीवन भर मन की तरुणाई
से जो मेल किया करते हैं
केवल वे मेरे साथी हैं !

1950

(11) यह नहीं मंज़िल...

यह नहीं मंज़िल तुम्हारी !

और चलना है तुम्हें,
और जलना है तुम्हें,
ज़िन्दगी की राह पर करना अभी संघर्ष भारी !

और पीना है गरल,
है तभी जीना सफल,
यह तुम्हारी ही परख की आ गयी है आज बारी !

सामने तूफ़ान है,
पर, बड़ा इंसान है,
पैर से जिसने मिटा दी संकटों की सृष्टि सारी !

यह मुझे विश्वास है,
बोलता इतिहास है,
मैं वहीं हूँ, काँपती जिससे कि काया ध्वंसकारी !
1954

(12) स्वर-साधना

सतत आश-विश्वास के स्वर
समय-बीन पर मैं बजाता रहा हूँ !

डगर पर घिरा है अँधेरा सघन,
भयावह निखिल आज वातावरण,
घटाएँ घिरीं और गरजा गगन,
मरण की चिता पर विजय-गान गाता रहा हूँ !

समेटो मनुज प्राण-साहस अमर,
अनल में तपो जो लगा है प्रखर,

जवानी बड़ी जायगी यों निखर,
सुनाकर सबल स्वर जगत को जगाता रहा हूँ !
1954

(13) भोर

क्या अभी भी रात्रि है कुछ शेष ?

स्तब्धता, लगता कि सोया भोर,
देखती आँखें क्षितिज की ओर,
सृष्टि का बदला नहीं क्यों वेष ?
क्या अभी भी रात्रि है कुछ शेष ?

दे रही ऊषा नहीं वरदान,
मौन विहगों का अभी तो गान,
उठ पड़े, पर, जाग मेरे प्राण,
सुन रहा जीवन नया संदेश !
क्या अभी भी रात्रि है कुछ शेष ?

स्वप्न से मुझको नहीं है मोह,
कर्मरत मानव-हृदय की टोह,
जागता मेरा रहे नव देश !
क्या अभी भी रात्रि है कुछ शेष ?
1954

(14) प्राण-दीप

रात भर जलता रहा यह दीप प्राणों का अकेला !

वेग लेकर नाश का आया पवन था,
शक्ति के उन्माद में गरजा गगन था,
दीप, पर, अविराम जलने में मगन था,
आ नहीं जब तक गयी संसार में नव-स्वर्ण-बेला !

रात भर हँस-हँस सतत जलता रहा है,
आँधियों के बीच भी पलता रहा है,
आततायी का अहम् दलता रहा है,
मूक, हत, भयभीत मानव को दिया जगमग उजेला !
1954

(15) नयी किरणें

फटते जाते / हटते जाते
सदियों की छायी
मूक उदासी के बादल !
मानों रूई के हलके
श्वेत बगूले फूले-फूले
आँधी में उड़-उड़ जाते हों !
मेरे मन की जड़ता के,
तम के, घोर निराशा के
बेछोर समाये उमड़े बादल
उर-नभ में छितराये जाते हैं !

जीवन की तमस-निशा के बाद
दिवाकर की किरणों में
बोल रहे खग,
खोल रहे अलसाए दृग !
भाव-लहरियों से पूरित सरल हृदय
दुख-वीणा के स्वर लय !

प्रतिध्वनि सुनता हूँ
आज नये जीवन की,
अंतर की अभिनव धड़कन की !
युग-युग के सोये भाव मधुर सब
धीरे-धीरे जाग रहे हैं,
कर्कशता के बर्बर प्रहरी
उलटे पैरों भाग रहे हैं !

उठता है अब भावी का परदा,
जिसकी पृष्ठभूमि पर
गत-जीवन के चित्र
अनेकों टूटे-टूटे,
बेजोड़, अधूरे, धुँधले
देते हैं साफ़ दिखायी !

इस परिवर्तन को मुक्त बधाई,
जिसने शिथिल-शिराओं को
नव-तरुणाई की ज्वाला दी,
जीवन को जयमाला दी !
1947

(16) तूफ़ानों का स्वागत

ऐसे छोटे-मोटे तूफ़ान
हमारे जीवन में अक्सर आते रहते हैं !
सिर के ऊपर, / दाएँ-बाएँ
    मँडराते रहते हैं !
हर रोज़
सुबह क्या शाम
    कभी भी छाते रहते हैं !

हम तूफ़ानों में पैदा होने वाले
तूफ़ानों में बढ़ने वाले
तूफ़ानी-जीवन के प्रेमी हैं !
क्योंकि हमारा अनुभव है
तूफ़ानों से संकट के आधार
धरा की शैया पर
डर कर सो जाते हैं,
जैसे कोई डरपोक अँधेरी निशि में
बिल्ली की आहट को चोर समझकर
कम्बल में मुँह ढक कर सो जाता है,

उसकी घिग्घी बँध जाती है
वैसे ही संकट मुर्दा हो जाते हैं।

तूफ़ान कभी
कमज़ोरों का साथ नहीं देता है,
तूफ़ानी धरती पर
मज़बूत, साहसी इंसान जनमते हैं !
मोटे-मोटे, ऊँचे-ऊँचे,
पत्तों-फूलों वाले
पेड़ पनपते हैं !

आओ, हम सब ऐसे तूफ़ानों की
युग-पथ की उस पुलिया पर हो एकत्र
प्रतीक्षा में बैठें,
उनके स्वागत को बैठें।

जिससे आज सभी के जीवन की
जर्जरता, धोखे की टटिया,
मिथ्या विश्वासों की गिरती दीवारें,
युग-युग का संचित
रीति-रिवाज़ों का
सड़ा-गला कूड़ा-करकट
नभ में काफ़ी ऊँचे उड़ जाये !
और सभी के मन की धरती
साफ़ मुलायम
दुख-दर्द समझने वाली हो जाये !
पानी पड़ते ही
कोमल-कोमल गदकारे
पौधों से ढक जाये,
जिस-पर श्रम से थककर,
सोने को मन कर-कर आये !
फिर चाहे तूफ़ान हजारों

गरज-गरज कर गुज़रें,
क्योंकि
बड़ी ही बेफ़िक्री का आलम होगा,
ऐसा तूफ़ानी सुख
दुनिया के किस आकर्षण से कम होगा ?

तो जर्जरता का मोह मिटा दो,
गढ़े-पुराने इतिहासों की
पुनरावृत्ति का स्वप्न हटा दो !
नया बनाओ, नया उगाओ !
जो तूफ़ानों को झेल सके,
उनकी बढ़ती काया को
खेल-खेल में ठेल सके !

1951

(17) दीया जलाओ

यह गुज़रता जा रहा तूफ़ान
अब तो तुम
नये घर में नया दीया जलाओ !

मिट गया है
स्वप्न का वह नीड़
जिसमें चाँद-तारे जगमगाते थे,
बीन के वे तार सारे भग्न
जिनमें स्वर किसी दिन झनझनाते थे !
भूल जाऊँ
इसलिए तुम अब
नये स्वर में नया मधु-गीत गाओ !

यह न पूछो
किस तरह मैं ज़िन्दगी की धार पर
उठता रहा, गिरता रहा,

भावनाएँ धूल पर सोती रहीं
या व्योम में उड़ती रहीं;
पर, जानता हूँ
घूँट विष की ले चुका कितनी,
असर विष का नहीं जाता
मुझे मालूम है यह भी !
पर, ज़रा तुम
घट-सुधा का तो पिलाओ !

है अभी तो चाह बाक़ी,
और उर के द्वार पर देखो
मचलता ज्वार हँसने का
शुभे! बाक़ी,
अभी तो प्यार के अरमान बाक़ी,
फूल-से मधुमास में खोयी
अनेकों मुग्ध पागल चाँद की रातें अभी बाक़ी,
वफ़ा की, बेवफ़ाई की
हज़ारों व्यर्थ की बातें अभी बाक़ी !
तुम तनिक तो मुसकराती
साथ में मेरे चली आओ !

1952

(18) परिचय

स्नेह की मधु-धार हूँ मैं !

पास जो आये न मेरे,
दूर का परिचय रखा बस,
भावना से हीन समझा
की उपेक्षा व्यंग्य से हँस,
जान पाये वे भला कब
प्रेम-पारावार हूँ मैं !

देह निर्बल देखकर जो
एक उड़ती-सी नज़र से,
फेरकर मुख, हो गये उस
क्षण अलग मेरी डगर से,
जान पाये वे भला कब
शक्ति का संसार हूँ मैं !

मुसकराया मैं न किंचित;
क्योंकि था अति क्षुब्ध-जीवन,
इसलिये जो लोग मुझको
हैं समझते मूक पाहन,
जान पाये वे भला कब
बीन की झंकार हूँ मैं !

कूल ही पर छोड़ मुझको
चल पड़े जो नाव लेकर,
ज्वार-लहरों में गये फँस,
अब गरजता सिंधु जिन पर,
जान पाये वे भला कब
मुक्ति की पतवार हूँ मैं !

1947

(19) अमिताभ

छा रहा शंका-तिमिर फिर
शीत-युद्ध सभीत वातावरण में !
और लगता है
लिपटते जा रहे पन्नग चरण में !
कान बजते फूत्कारों के स्वरों से,
शांति घायल
उड़ गयी सारे घरों से !
है प्रपीड़ित भग्न जन-मानस
परस्पर की कलह से !

स्नेह-सूखे नेत्र निर्मम,
क्रुद्ध-मुद्रा मूक हर-दम !

घिर रहीं संस्कृति-क्षितिज पर
ध्वंस संकेतक घटाएँ,
जल रही हैं फिर मनुज की
भोग-रत सूखी शिराएँ !
उग रहा फिर
स्वार्थ का जंगल
अमंगल,
देखकर जिसको नहीं खिलते कभी
फल-फूल जीवन के,
नहीं देते सुनायी
गीत सावन के !
नहीं बहते कभी
जिसमें मधुर निर्झर,
नहीं देते सुनायी
मुक्त विहगों के सरस स्वर !

इसलिये अमिताभ !
युग की दृष्टि तुम पर
है लिये विश्वास दृढ़तर;
सौम्य-मुख की हर किरन को
आज दो फिर हर नयन को !
यह नयी पीढ़ी
तुम्हारी मूक-सेवा साधना से
बलवती हो !
यह नयी पीढ़ी
तुम्हारे भव्यतम उत्सर्ग की शुभ-भावना से
बलवती हो !
1955

(20) आज की ज़िन्दगी

ज़िन्दगी हँसती हुई मुरझा गयी ;
चाँद पर बदली गहन आ छा गयी !

यामिनी का रूप सारा हर लिया
कामिनी को हाय विधवा कर दिया !

आदमी की सब बहारें छीन लीं,
उपवनों की फूल-कलियाँ बीन लीं !

फट गया मन लहलहाते खेत का,
बेरहम तूफ़ान आया रेत का !

उर-विदारक दीखता है हर सपन,
सब तरफ़ से चाहनाओं का दमन !

रीति बदलीं आधुनिक संसार की,
राह सारी मुड़ गयी हैं प्यार की !

सामने बस स्वार्थ का जंगल घना
दुर्ग जिसमें डाकुओं का है बना !

मौत की शहनाइयाँ बजती जहाँ,
रंग-बिरंगी अर्थियाँ सजती जहाँ !

लेटने को हम वहाँ मजबूर हैं,
वेदना से अंग सारे चूर हैं !

इस तरह लँगड़ी हुई है ज़िन्दगी
लड़खड़ाकर गिर रही लकवा लगी !
1955

(21) मध्य-वर्ग (चित्र 1)

मेघों से घिरा आकाश है !
चहुँ ओर छाया,
बंद आँखों के सदृश,
गहरा अँधेरा,
घोंसलों में मूक चिड़ियाँ
ले रहीं सुख से बसेरा,
और हर अट्टालिका में
बज रहा मनहर पियानो, तानपूरा !

पर, टपकती छत तले
सद्यः प्रसव से एक माता आह भरती है !
मगर यह ज़िन्दगी इंसान की
मरती नहीं,
रह-रह उभरती है !
1955

(22) मध्य-वर्ग (चित्र 2)

दस बज रहे हैं रात के
काफ़ी दूर पर
कुछ बेसुरे-से ढोल बजते हैं
किसी बारात के !

अति-तार स्वर से
गा रहा है रेडियो सीलोन
बासी गीत फ़िल्मी
'आन' के 'बरसात' के !

पास के घर में
थकी-सी अर्द्ध-निद्रित
तीस वर्षीया कुमारी

करवटें लेती किसी की याद में !

क्लर्क है उसका पिता
और वह उलझा हुआ है
फ़ाइलों के ढेर में !
(ज़िन्दगी के फेर में !)
सोचता है
रात काफ़ी हो गयी,
अब शेष देखा जायगा जी बाद में !

झँपने लगीं पलकें
बड़े बेफ़िक्र बचपन की सहेजी याद में !
1955

(23) भविष्यत्

मनुष्य के भविष्य-पंथ पर
अपार अंधकार है,
प्रगाढ़ अंधकार है !
न चाँद है, न सूर्य,
बज रहा न सावधान-तूर्य !

मृत्यु के कगार पर
खड़ी मनुष्यता सभीत,
बार-बार लड़खड़ा रही !
कि उद्जनों व अणुबमों-प्रयोग से
कराह काँपती मही !
तबाह द्वीप हो रहे,

बड़े-बड़े नगर तमाम
देखते सदैव स्वप्न में 'हिरोशिमा' !
गगन विराट वक्ष पर
विकीर्ण लालिमा,

धुआँ, धुआँ, धुआँ !

मनुष्य के भविष्य-पंथ पर
प्रकाश चाहिए,
प्रकाश का प्रवाह चाहिए !
हरेक भुरभुरे कगार पर
सशक्त बाँध चाहिए !
अटल खड़ा रहे मनुष्य,
आँधियों के सामने
अड़ा रहे मनुष्य
शक्तिवान, वीर्यवान, धैर्यवान !

ज़िन्दगी तबाह हो नहीं,
कराह और आह हो नहीं !
हँसी !
सफ़ेद दूधिया हँसी
हरेक आदमी के पास हो !
सुखी भविष्य की
नवीन आस हो !
1955

(24) लेखनी से

लेखनी मेरी !
समय-पट पर चलो ऐसी कि जिससे
त्रस्त जर्जर विश्व का
फिर से नया निर्माण हो !
क्षत, अस्थि-पंजर, पस्त-हिम्मत
मनुज की सूखी शिराओं में
रुधिर-उत्साह का संचार हो !

ओ लेखनी मेरी, चलो !
साये हुए हैं जो

उन्हें उगते दिवाकर की ख़बर दो !
और पथ में जो रुके
उनको नयी ज्योतित डगर दो !
काफ़िला जो
रेत के नीचे दबा बेचैन है
उसे सतत आकाश-आरोहणमयी
नव-शक्ति दो !
तेवान, गोआ की ज़मी को मुक्ति दो !

भयभीत जो
उसको सबल विश्वास दो !
रोते हुए मुख पर
रुपहला हास दो !

ओ लेखनी मेरी ! चलो,
जिससे कि दकियानूस-दुनिया के
सभी दृढ़ लौह बंधन टूट जाएँ,
और संस्कृति-सभ्यता की मूर्तियाँ सब
आततायी के विषैले क्रूर चंगुल से
सदा को छूट जाएँ !

ध्वंस पर
अभिनव-सृजन-आह्वान दो,
हर आदमी के कंठ में
श्रम का सबल मधु गान दो !
प्रत्येक उर में
प्यार का सागर भरो,
धुँधले नयन में
रोशनी घर-घर भरो
1955

(25) मैं कहता हूँ !

मैं शोषित दुनिया के
आज करोड़ों इंसानों से कहता हूँ,
मैं भूखों-नंगों, पददलितों,
बेबस और निरीहों की
आहों से कहता हूँ
अब और अँधेरे में
मत खोजो पथ अपना,
अब और न देखो
अंतर की आँखों से सपना !
खोलो पलकों को साथी,
नया सबेरा
आज तुम्हारे स्वागत को तैयार !
कोयल वृक्षों के झुरमुट से
कहती आज पुकार-पुकार
नया सबेरा, नया ज़माना
बदल गया संसार !

मैं उन लड़ने वाले,
हिमगिरि की छाती पर चढ़ने वाले,
कंटक-पथ पर बढ़ने वाले
चरणों से कहता हूँ
अब मंज़िल बिल्कुल पास तुम्हारी,
निश्चय ही
होगी पूरी आस तुम्हारी !
युग-युग की
सारी बीमारी मिट जाएगी !
मुख पर छायी
करुण उदासी हट जाएगी !
नयी हवा में, स्वच्छ हवा में
तन को जर्जर करने वाले कीड़े-मच्छर

इस दुनिया से भग जाएंगे,
उड़कर दूर कहीं पर
कीचड़-दलदल पर मँडराएंगे !

मैं उन भारी-भरकम
युग-नभ-भेदी दुर्दम
आवाज़ों से कहता हूँ
नवयुग का जय-जयकार करो !
अगणित कंठों में
विजयी गान भरो !
फ़ौलादी ताक़त जनता की
कल के अवरोधी दुर्गों पर
उन्मुक्त खड़ी !
हो, सचमुच, ऐसी घड़ियों की
उम्र बड़ी !

मैं उन जीने और जिलाने वालों से,
इंसानों की शक्लों में
जाग्रत शांत फ़रिश्तों से,
जनयुग को
मज़बूत बनाने वालों से कहता हूँ

धरती खोदो !
माँ आँचल में
सोने-चाँदी के उपहार लिए,
बरसों से सतत प्रतीक्षा में
देख रही है राह तुम्हारी !
पहुँचो
आयी बड़े दिनों के बाद
ग़रीबों की बारी !
1951

(26) राही

जब आज तुम्हारे नयनों ने
युग-पथ पहचान लिया,
जीवन के हर अनुभव से
अपना और पराया जान लिया,
फिर क़दमों को भय क्या है ?
हिम्मत से आगे बढ़े चलो,
निर्भय हो आगे बढ़े चलो,
ताक़त से आगे बढ़े चलो !

राही बनकर निकले हो
क्या झंझा के घोर झकोरों से,
पथ के हिंसक चोर-लुटेरों से,
कंकड़-पत्थर की अविरल बौछारों से,
नाशक अस्त्रों के तीव्र प्रहारों से
डर जाओगे ?
कायर बन कर,
पीठ दिखा कर,
भग जाओगे ?

राही बन कर निकले हो
यदि झाड़ी-काँटों के घेरे से,
पथ पर छाये सघन अँधेरे से,
टकराने में सकुचाओगे,
तो निश्चय ही

काँटों में फँस जाओगे !
दलदल में धँस जाओगे !
मिट्टी में मिल जाओगे !

आँखों में रोष उतारो,

फ़ौलादी मुट्ठी बाँधो,
बादल से गरजो-गरजो !
पर्वत की छाती को फोड़ो,
चट्टानों की दीवारों को तोड़ो,
दुर्दम दुर्जय धारा बनकर उमड़ो !
जिससे थर-थर काँपे
अवरोधी भूतों के टोली,
हो जाए सारे अरमानों की होली !
बिखरे केवल आज तुम्हारे
विश्वासों की,
आशाओं-अभिलाषाओं की रोली !

सौगंध तुम्हें मेरे राही !
रुकना न कभी,
जब तक निज बल से
उस ताक़त का चकनाचूर न हो
जिसने क़ैद सबेरे को कर रक्खा है !
जिसने दिल की धड़कन पर
ख़ूनी पंजा रक्खा है !
तुम उसको रवि बनकर ध्वस्त करो !
पूँजीशाही दुनिया के
वैभव-युग को अस्त करो !
1951

(27) अनुष्ठान

ग़रीबी अब
अमीरी के न क़दमों पर झुकेगी !
हाथ फैलाते हुए
अब और दीखेंगे न
जूठे चार-टुकड़ों के लिए
मानव बुभुक्षित !
नग्न तन का ढाकने को औरतें

उतरे हुए अब वस्त्र चाहेंगी नहीं !

सच है
मिटेगी यह न युग की नव-जवानी अब
किसी की वासना की पूर्ति में !
हरगिज़ अलापेंगे नहीं
गायक कला-साधक
किसी क्षय-ग्रस्त जर्जर वर्ग के हित !

ग़रीबी ने बग़ावत का
प्रबलतम कर दिया एलान,
बुभुक्षित का
उठा है जाग फिर अभिमान !

लो, सारी दमित शोषित दुखी हत औरतें
बलिदान करने को खड़ीं तैयार !
युग की नव-जवानी मुक्त है,
नव-लालिमा से युक्त है !
उठा प्रेरक
नये कवि का नया संगीत है !
आकाश में तारों सरीखी
आज तो उसकी लिखी
ध्रुव जीत है !

उट्ठो, करोड़ों मेहनतकश नौजवानो !
विश्व का नक़्शा बदलने के लिए ;
अणु-शक्ति से,
सुख से भरी
दुनिया बनाने के लिए अभिनव,
धरा पर शीघ्र लाने को
नया मानव !
1950

(28) पटाक्षेप

दमन के बादलों को चीर अब बिजली चमकती है,
अँधेरा दूर होता है, नयी आभा दमकती है !
अथक जन-शक्ति के तूफ़ान छाये आसमानों पर
कि गहरी धूल के कम्बल दिशाएँ ओढ़ती डर कर !

सदा विद्रोह होता है, ज़माना जब बदलता है,
नया संसार आता है, पुराना जीर्ण जलता है,
न हिम्मत हारता इन्सान चाहे मौत मँडराये
हज़ारों ज़िन्दगी के गीत उसने शान से गाये !

भरे उत्साह, दुर्दम शक्ति, जीवन-वेग-नव दुर्धर
नया इंसान पैदा हो गया है आज धरती पर,
कि जिसके सामने प्रतिरोध आकर टूट जाता है,
अनल जिसको बड़ा गहरा प्रबल सागर बताता है !

चुनौती दे रहा वह भाग्य के निश्चित सितारों को,
बनाया जा रहा फिर से सभी युग भग्न-तारों को,
नया मनु बल समाया यांग्त्सी की स्वस्थ घाटी में
नयी बस्ती बसी पीली पुरानी मूक माटी में !

सुरंगें उड़ रहीं साम्राज्य शाहों ने बिछायीं जो,
धसकती जा रही दीवार डॉलर ने उठायी जो,
मिटेगा नस्ल का सिद्धान्त भी प्रत्येक कोने से
टिकेगा अब नहीं उद्जन-बमों की फ़स्ल बोने से !
1950

(29) निश्चय

एक दिन निश्चय
तुम्हारे हर घिनौने और ज़हरीले
इरादों की समस्त जड़ें

अवनि को फोड़ उखड़ेंगी।
एक दिन निश्चय
तुम्हारी बेरहम नंगी कि ख़ूनी
वासनाओं की सड़ी धारा
धरा की धमनियों को छोड़कर
आकाश-पथ पर सूख जाएगी !
तुम्हारे स्वप्न के

सारे गगन-चुंबी महल
अभिनव प्रखर स्वर्णिम सुबह तक
पत्थरों के ढेर में
निश्चय, बदल कर
भूमि पर सोते मिलेंगे !

आज जन-जन के हृदय में आग है,
मुँह से निकलती बात भी बेलाग है !
संघर्ष से हर आदमी को
हो गयी बेहद मुहब्बत,
ज़िंदगी की पड़ गयी आदत
हमेशा राह पर चलना !
निरंतर सूर्य-सा जलना !
मनुष्यों की अथक ऐसी
निडर, दृढ़ फौज़ उगती जा रही,
जिसके क़दम पड़ते
धरा सज्जा बदलती जा रही !
1950

(30) झुकना होगा !

धधकी नव-जीवन की ज्वाला पर
जितना तुम और अँधेरा फेंकोगे
वह उतनी ही द्विगणित आभा से दमकेगी !
जितने गहरे काले घन अम्बर में छाएंगे

उतनी गहरी उज्वलता से बिजली चमकेगी !

धरती पर जितनी
मनुज-रुधिर की बूँद गिरेंगी
उससे कहीं अधिक
विद्रोही जनता की फ़सल उगेगी !
जितना ज़्यादा जन-धारा को रोकोगे
उतनी ही गति से
वह अँगड़ाकर, लहराकर
पर्वत की छाती को फोड़ बहेगी !
जितना ज़्यादा निर्धन जनता को लूटोगे
उतना ही बदले में
मूल्य चुकाना होगा !
जितना ज़्यादा भोली मानवता पर
चढ़ इतराओगे
उतना ही उसके सम्मुख
घुटनों के बल झुकना होगा !
1951

(31) तुम आज लिख लो

तुम आज लिख लो
कि थोड़े दिनों में
हज़ारों युगों की
पुरानी, सड़ी
दासता की इमारत बड़ी
भूमि पर लोटती
भग्न बिखरी मिलेगी !
अनेकों बरस से
ग़रीबों, किसानों
मजूरों व श्रमिकों के
ताज़े रुधिर से
सनी वाटिका

पूर्ण उजड़ी मिलेगी !
दमन के धुएँ से
नयी आग बन कर
गगन में लहरती दिखेगी !

कि जिससे
लुटेरों के डेरे मिटेंगे,
व जिनकी सबेरे-सबेरे
हवा में बुझी राख उड़ती दिखेगी !
1951

(32) बदलकर रहेगा !

हवा जो चली है नयी वह
गरजती हुई कल
बनेगी अथक वेग तूफ़ान का !
और जो आज
युग की हरारत से
पिघला जमा बर्फ़
वह कल
प्रवाहों की दृढ़ शक्ति बनकर के
दुनिया का नक़्शा
बदल कर रहेगा !
कि जो यह लगा है
अभी आज हलका-सा धक्का
वही कल धरा को
उलट कर, पुलट कर,
हिला कर, डुला कर,
नया रूप देकर रुकेगा !

1951

(33) नयी सुबह

जो बर्फ़ीली रातों में
ओढ़े कुहर का कम्बल,
गठरी से बन
चिपका लेते उर से टाँगे निर्बल ;
अधसोये से
कुछ खोये-खोये से
देखा करते नयी सुबह का स्वप्न मनोरम,
कब होता है विश्वास कराहों से कम ?

सर्दी ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है
नव-जीवन की चिनगारी
निकट सरकती आती है।
ये आँखें देखेंगी कुछ क्षण के बाद
नया सबेरा, नया ज़माना !
नव-जीवन का नव-उन्माद !

कभी भी बुझ न सकेगा
जलता नूतन दुनिया के
आज करोड़ों मेहनतकश इंसानों की
आशाओं-अभिलाषाओं का नया चिराग़ !
1951

(34) सावधान

अब और न चलने पाएगी परदापोशी,
भंग हुई है गत युग की जड़ता बेहोशी !

सावधान हो जाओ, ओ ! जन-पथ के द्रोही,
युग है दलितों का जिसकी बाट सदा जोही !

ललकार रहा है नित धरता मज़बूत क़दम

इंसान नया, नव राह बना, कर दूर वहम !

कंधों पर आज किये नव-रचना भार वहन,
टकरा कर मर्दित दग्ध-विषैला-क्रूर दमन !

निष्फल अभियान विपक्षी व्यूह हुए लुंठित,
कल की आँधी देख रही प्रतिहत राह थकित !

नव-लाली ले उगता लो जनता का सूरज,
'नया सबेरा' आज दमामा कहता बज-बज !

मानव के हाथों में सुदृढ़ हथौड़े का बल,
पर्वत की छाती पर चलता जनता का हल !
हरियाली लाएगा, समता विश्वास अमर,
फूटेंगे अंकुर पथरीली बंजर भू पर !

रस का सागर लहराएगा जन-जन के हित,
बरसेगा जीवन कण-कण पर मुक्त असीमित !
1949

(35) नया यौवन

आत्म-निर्भरता, अमिट विश्वास,
अद्‌भुत धैर्य से
शोषित, दमित, वंचित, दुखी
जगकर बग़ावत के लिए तैयार हैं !
अब दासता का बोझ
पल भर भी नहीं स्वीकार है !

बरसों पुराने बंध ढीले हो गये,
ख़ूनी विरोधी राक्षसों के
लाल फूले गाल पीले हो गये !
साम्राज्यवादी शृंखलाएँ लौह की

जिनने जकड़ इंसान को
दम घोंट देने का
रचा षड्‌यंत्र था,
जनतंत्रवादी शक्तियों की चोट से,
स्वाधीनता के प्रज्वलित अंगार से,
हर ग्रंथि से
हर जोड़ से
अब टूटती जातीं सभी !

जंगबाज़ों
ज़िन्दगी के दुश्मनों की टुकड़ियाँ
फैली हुई हैं जो
धरा के वक्ष पर कुछ इस तरह
जिससे कि लेने ही नहीं देतीं
कभी साँसें खुली;
जन-शक्ति के
उत्साह के भूकम्प से निर्मित
दरारों में दबी जातीं
हज़ारों मील गहरी कब्र बन !

जूझा नये युग का नया यौवन
अथक, दुर्दम
कि जो विष तक पचा लेगा,
मरण को सिर उठाने तक नहीं देगा,
अकेला
तप्त लोहे के चने निर्भय चबा लेगा !

यही है वह नया यौवन
बगीचों में रबर के
और फैले जंगलों में
जो मलय के आज उमड़ा है !
यही है वह नया यौवन

कि जो -
जीवित बहादुर मुक्त उत्तर-कोरिया की
हर गली में आज उमड़ा है !
बड़ी मज़बूत डॉलर से बनी
दीवार का उर भेद कर
मैदान में जो चीन के
दरिया सरीखा बाढ़-सा छा आज फैला है !
कि इण्डोचीन की लहरें
उसी के रक्त से खौलीं !

जहाँ के नौजवानों के गलों से
झर रही विद्रोह की बोली !
यही है वह नया यौवन
कि जो नव-एशिया के हर मनुज के
चेहर पर आज दमका है !
सघन काले भयावह बादलों को चीर कर
बिजली सरीखा मुक्त चमका है !

अमित-पुरुषार्थ,
अविजित-शक्ति
उज्ज्वल शांति के विश्वास को लेकर
सुखद सुन्दर नयी दुनिया बसाने को
करोड़ों हाथ कसकर
आज जो तैयार है !
जन-शक्ति के सम्मुख
रुआँसा लड़खड़ाता रोष
एटम-बॉम्ब का
बेकार है,
बेकार है !
1951

(36) जनता

आतंक का शासन
हमेशा रह नहीं सकता;
क्योंकि जनता
कुंभकर्णी नींद सोती है नहीं !
क्योंकि जनता की
कभी भी मौत होती है नहीं !

प्रमाणों की ज़रूरत और
यदि करनी तुम्हें महसूस
जनता के हृदय की साँस की धड़कन
किसी भी देश के इतिहास के पन्ने
पलट कर देख सकते हो !
नहीं तो आज
मेरा देश आकर घूम सकते हो !
जहाँ इंसान ने
काली निराशा की पुरानी लाश को
भू की अतल गहराइयों में गाड़ कर
रंगीन अभिनव आश के
विश्वास के पौधे लगाये हैं !
अँधेरे में हज़ारों दीप
जीवन के जलाये हैं !
जवानी से भरी नदियाँ
जहाँ पर मुक्त बहती हैं,
कि कल-कल राग में
युग का नया संदेश कहती हैं !

जहाँ इंसान
दुनिया को बदलने के लिए
बड़े उत्साह से संयुक्त होते हैं !
कड़े श्रम से

धरा पर ज़िन्दगी के बीज बोते हैं !

1951

(37) जवानों का गीत

मिलाये क़दम से क़दम, गीत गाती,
बढ़ी जा रही है जवानों की टोली !
जवानों की टोली !

मनुज को बदलने, धरा को बदलने,
दमन की सभी शक्तियों को कुचलने,
जलाने असुर-राज की आज होली !
मिलाये क़दम से क़दम, गीत गाती,
बढ़ी जा रही है जवानों की टोली !
जवानों की टोली !

डगर में ज़रा भी न कोई रुका है,
प्रहारों के सम्मुख न कोई झुका है,
हिमालय-से सीने पै झेली है गोली !
मिलाये क़दम से क़दम, गीत गाती,
बढ़ी जा रही है जवानों की टोली !
जवानों की टोली !

इमारत नयी ये बनाने चले हैं,
कि खेतों में सोना उगाने चले हैं,
भरेंगे सताये गरीबों की झोली !
मिलाये क़दम से क़दम, गीत गाती,
बढ़ी जा रही है जवानों की टोली !
जवानों की टोली !

सबेरा हुआ है, अँधेरा मिटा है,
कि आँखों के आगे से परदा हटा है,
बिखरती गगन में नयी आज रोली !

मिलाये क़दम से क़दम, गीत गाती,
बढ़ी जा रही है जवानों की टोली !
जवानों की टोली !

बरस कर घने बादलों से धरा पर,
करोड़ों सबल मुक्त हाथों से मल कर,
युगों की पुती कालिमा सख़्त धो ली !
मिलाये क़दम से क़दम, गीत गाती,
बढ़ी जा रही है जवानों की टोली !
जवानों की टोली !

1955

(38) तसवीरें

दूर कहीं पर
सामूहिक गर्जन-स्वर का
मेरे नभ की उन्मुक्त-तरंगों में कंपन !
सुबह-सुबह महसूस हुआ ऐसा
कुछ बदल गयी है दिल की धड़कन !

शायद फिर मौसम बदला है,
बर्फ़ हिमालय का पिघला है !

आज तभी तो
गंगा-यमुना की धाराएँ अँगड़ाईं !
चट्टानों को तोड़ रहीं
जाने कितना अंतर में जीवन भर लायीं !

पूरब के स्वाधीन समुद्रों में अब
डोल उठे अरमान नये,
तूफ़ान नये !
जिनके बारे में सुन तो रक्खा था
पर, वे इस धरती को

छूते देखे नहीं गये।

आज सुबह के आसमान में
आभास उन्हीं का पाया,
मानों सत्य खड़ा हो सम्मुख
छिन्न-भिन्न करके माया !
हलके-हलके कुछ बादल छाये थे
जिनमें मैंने देखे चित्र अनेकों
जैसे कोई सरमाया का भूत
नये इंसानों के क़दमों के नीचे
दम तोड़ रहा है !
मैंने देखा जैसे कोई
भूखों, नंगों, पददलितों को
नंदन वन में छोड़ रहा है !
मैंने देखा जैसे कोई
पंक्ति कपोतों की
ख़ुश-ख़बर सुनाने आयी है !
मैंने देखा जैसे कोई
गेहूँ की बालें बिखर-बिखर कर छायी हैं !

इन चित्रों ने मुझको दृढ़ विश्वास दिया है,
जीवन-संघर्षों में अभिनव उल्लास दिया है,
श्रमजीवी जनता की
ताक़त का आभास दिया है !
आज वही तसवीरें
नभ पर प्रतिबिम्बित हैं !

आज वही तसवीरें
जन-जन के मन पर अंकित हैं !
आज उन्हीं तसवीरों को
धरती रखने को लालायित है !

1955

(39) बहुतेरे

आज सबेरा होता है
पर, बहुतेरे सोते हैं,
काट रहे जन आज फ़सल
पर, बहुतेरे रोते हैं !

आज नयी गंगा बहती
पर, बहुतेरे प्यासे हैं,
चातक से बन इस जल को
पीना घातक कहते हैं !

आज नयी जो चली हवा
इन खेतों-खलिहानों पर,
जन-जन लेते साँस मुक्त
पर, बहुतेरे रहे सिहर !

आज नया संसार बना
पर, कुछ कलियुग समझ रहे,
डर अपनी परछाईं से
अपने में ही उलझ रहे !

1953

(40) पुनर्निर्माण

उद्धारक लगा रहे आवाज़
　　‘पुनर्निर्माण करो,
　　पुनरुत्थान करो,
　　चिर-खंडित नष्टप्राय संस्कृति का,
　　आदिम युग के आदर्शों का !’

बीते वर्षों के रीते घट,
तम के पट पर विगत युगों की

सभ्यता, कला म्लान आज,
ढह गया महान पुरातन !
'जीवन-सत्यों' की लिपि
धुल गयी अरे !
फिर से बुझे दीप को आज जलाओ,
मानवता की उस दबी राह को
खोदो !
(खो दो !)

इस नवीन ज्योति की चकाचौंध में
आँखें पथराई-सी,
इसको हलका करना यदि
तो फिर से दबा अँधेरा फेंको !
जिससे धर्मान्ध मनुष्यों की,
सामन्तों-पूँजीपतियों की,
राजा, थोथे नेताओं की
झूठी क़लई पर आग न आये,
आँच न आये !
डर है
कि कहीं झूठा रंग उतर ना जाये !

बुद्धि अगर बढ़ जाएगी
तो शेरों की खालों में
छिपे हुए गीदड़
अब और न जीवित रह पाएंगे !
इसीलिए आज पुनर्निर्माण करो -
नूतन संस्कृति के
इस उगते तेज़ उजाले पर
अंधकार से
पुनरुत्थान से प्रहार करो !
1948

(41) नयी चेतना

आँधियाँ फिर से क्षितिज पर
मुक्त मँडराने लगीं !
जन-सिन्धु में हलचल नयी,
अँगड़ाइयाँ भर सुप्त लहरें
व्याघ्र-स्वर करती जगीं !

दूर का प्रेरक बड़ा उद्गम
रुकावट चीर कर,
चट्टान का उर भेद कर,
शायद, गरजता बढ़ प्रवाह गया !
कर लिया संचित सुदृढ़ बल फिर
अथक दुर्दम नया !
है तभी तो युग तुम्हारे
प्राण में उत्साह, जीवन, स्नेह, धड़कन !
मरकुरी-सी ज्योति

आगत युग-नयन की,
दूर है धुँधली सभी छाया सपन की !
ढीर जड़ता की गयी गिर,
तुम तभी तो देख लेते हो
छिपे अगणित विरोधी,
और उनको भी
बदल कर भेष अपना
जो तुम्हारे साथ होने का
सरासर झूठ ख़ुफ़िया-सा वचन
विश्वास का तुमको सुनाते हैं !

सभी ये जन-विरोधी शक्तियाँ
जब मिल गयीं
लख कर निजी हित

और जर्जर 'इन्क़लाबी गीत' से
संसार को
नव-पथ-दिशा से रोक
भरमाने लगीं,
सम्मुख तभी तो
आँधियाँ फिर से क्षितिज पर
आज मँडराने लगीं !
संघर्ष-ज्वाला की प्रखर लपटें
पुनः अविश्रान्त लहराने लगीं ।

1952

(42) विनाश-लील

(उद्‌जन-बम विस्फोट पर)

डॉलर-मद से मतवाले मानव के
हाथों में उद्‌जन-बम है

रे नयी व्यवस्था के निर्माता
सावधान !
रे जनयुग के आकांक्षी
सावधान !
समता, शान्ति, न्याय-प्रिय मानव
सावधान !

यह मानवता का रक्षक कहलाने वाला
अभी-अभी उद्‌जन-बम से
बिकनी टापू पर खेल चुका है,
जिसका गरलाक्त धुआँ
सम्पूर्ण प्रशान्त-महासागर में फैल चुका है !

यह वही हिमायती प्रजातन्त्र का
जिसने नागासाकी, हिरोशिमा पर
अणु-बम बरसाये थे,

जिसने जापानी-इन्सानों पर चढ़
फूहड़ मृत्यु-गीत गाये थे,
मानवता के उर्वर खेतों पर
जिसने कोढ़ उगाया था,
जिसने दिशा-दिशा में
अग्नि-कुहर बरसाया था !

वही आज फिर
उद्‌जन बम को तोल रहा है !
फूहड़ मृत्यु गीत गाने
मुख खोल रहा है !
जिसकी प्रारम्भिक गति से ही
ईथर में मानव-ग्रह डोल रहा है !

रे जीवन के शिल्पी
सावधान,
सुख-स्वप्नों के दर्शी
सावधान,
मुसकानों के प्रेमी
सावधान !

1956

(43) बन्द करो

भूखों-नंगों दुखियारों की,
मानव-अधिकारों की
आवाज़ नहीं है यह !
भाई-चारे का सच्चा भाव नहीं है यह !
तूफ़ानी सागर में उलझे मानव की
उद्धारक नाव नहीं है यह !

जब संस्कृति की नंगी लाश
तुम्हारे हाथों में है,

लाखों इंसानों का ख़ून
तुम्हारे दाँतों में है
अस्मत-भक्षी दुर्गन्ध
तुम्हारी साँसों में है,
तुम करते हो
मानव-अधिकारों की बात ?
मज़लूमों की छाती पर
कर फ़ौलादी जूतों के आघात !

बस, अपने नापाक इरादों के
नारों को बन्द करो !
शोषित दुनिया के ऊपर से
गुज़र गयी है रात !
जागृति की वर्षा होती है
कागज़ की दीवारों पर
मत नक़ली रंग भरो !
मानव-अधिकारों की
आवाज़ लगाने वाले उट्ठे हैं,
अब महल
तुम्हारी थोथी मानवता का
ढह जाएगा !
जिस पर चढ़ कर ;
समता का गीत नया
हर मानव निर्भय गाएगा !
1955

(44) आज

दिन-पर-दिन होता साकार हमारा सपना,
सार्थक होगा निश्चय युग-ज्वाला में तपना !

कल तक जो धुँधला-धुँधला-सा था दूर बहुत,
वह लक्ष्य हमारा आज निकट नव-आभा-युत !

कल तक जो हमको शंका से देख रहे थे,
और हमारे यश पर कीचड़ फेंक रहे थे,

समता-संस्थापन में आ रोड़े अटकाए,
व्यर्थ हमारे पथ पर आये दाएँ-बाएँ !

आज वही पहचान रहे मानवता की गति,
छोड़ रहे गत जर्जर-मिथ्या-युग के प्रति रति,

सीख रहे अभिनव आदर्शों को अपनाना,
कर्कश स्वर की जगह मधुर-जीवन का गाना !
1953

(45) मज़लूम

सारे जग का सोया जन-सागर
जब अभिनव स्वर सुनकर उठा सिहर,
सबने समझा
कहीं गिरी है ध्वंसक गाज
पर, वह तो गरजी थी मज़लूमों की आवाज़ !

शोषक-दुर्गों को दृढ़ दीवारें
तड़कीं केवल कंपन के मारे,
सबने समझा
भूडोल उठा है दुर्दम
पर, वे तो थे मज़लूमों के कुछ कूच-क़दम !
1949

(46) श्रमिक

टिकी नहीं है
शेषनाग के फन पर धरती !
हुई नहीं है उर्वर
महाजनों के धन पर धरती !

सोना-चाँदी बरसा है
नहीं ख़ुदा की मेहरबानी से,
दुनिया को विश्वास नहीं होता है
झूठी ऊलजलूल कहानी से !

सारी ख़ुशहाली का कारण,
दिन-दिन बढ़ती
वैभव-लाली का कारण,
केवल श्रमिकों का बल है !
जिनके हाथों में
मज़बूत हथौड़ा, हँसिया, हल है !
जिनके कंधों पर
फ़ौलाद पछाड़ें खाता है,
सूखी हड्डी से टकराकर
टुकड़े-टुकड़े हो जाता है !

इन श्रमिकों के बल पर ही
टिकी हुई है धरती,
इन श्रमिकों के बल पर ही
दीखा करती है
सोने-चाँदी की 'भरती' !

इनकी ताक़त को
दुनिया का इतिहास बताता है !
इनकी हिम्मत को
दुनिया का विकसित रूप बताता है !
सचमुच, इनके क़दमों में
भारीपन खो जाता है !
सचमुच, इनके हाथों में
कूड़ा-करकट तक आकर
सोना हो जाता है।

इसीलिए
श्रमिकों के तन की क़ीमत है !
इसीलिए
श्रमिकों के मन की क़ीमत है !

श्रमिकों के पीछे दुनिया चलती है ;
जैसे पृथ्वी के पीछे चाँद
गगन में मँडराया करता है !
श्रमिकों से
आँसू, पीड़ा, क्रंदन, दुःख-अभावों का जीवन
घबराया करता है !
श्रमिकों से
बेचैनी औ' बरबादी का अजगर
आँख बचाया करता है !

इनके श्रम पर ही निर्मित है
संस्कृति का भव्य-भवन,
इनके श्रम पर ही आधारित है
उन्नति-पथ का प्रत्येक चरण !

हर दैविक-भौतिक संकट में
ये बढ़ कर आगे आते हैं,
इनके आने से
त्रस्त करोड़ों के आँसू थम जाते हैं !
भावी विपदा के बादल फट जाते हैं !
पथ के अवरोधी-पत्थर हट जाते हैं !
जैसे विद्युत-गतिमय-इंजन से टकरा कर
प्रतिरोधी तीव्र हवाएँ
सिर धुन-धुन कर रह जाती हैं !
पथ कतरा कर बह जाती हैं !

श्रमधारा कब

अवरोधों के सम्मुख नत होती है ?
कब आगे बढ़ने का
दुर्दम साहस क्षण भर भी खोती है ?
सपनों में
कब इसका विश्वास रहा है ?
आँखों को मृग-तृष्णा पर
आकर्षित होने का
कब अभ्यास रहा है ?

श्रमधारा
अपनी मंज़िल से परिचित है !
श्रमधारा
अपने भावी से भयभीत न चिंतित है !

श्रमिकों की दुनिया बहुत बड़ी !
सागर की लहरों से लेकर
अम्बर तक फैली !
इनका कोई अपना देश नहीं,
काला, गोरा, पीला भेष नहीं !
सारी दुनिया के श्रमिकों का जीवन,
सारी दुनिया के श्रमिकों की धड़कन
कोई अलग नहीं !
कर सकती भौगोलिक सीमाएँ तक
इनको विलग नहीं !

1951

(47) मानव-समता का त्योहार

जब तक जग के कोने-कोने में न थमेगा
सामाजिक घोर विषमता का
                    बहता ज्वार,
हर श्रमजीवी तब तक
अविचल मुक्त मनाएगा

'मई-दिवस' का त्योहार !
मानव-समता का त्योहार !

वह मई-माह की पहली तारीख़
अठारह-सौ-छियासी सन् की,
जब अमरीका के शहरों में
मज़दूरों की टोली
विद्रोही बनकर निकली !
देख जिसे
थर-थर काँपी थी पूँजीवादी सरकार,
पशु बनकर मज़दूरों पर
जिसने किये दमन-प्रहार !
पर, बन्द न की जनता ने
अपने अधिकारों की आवाज़,
भर लेता था उर में
उठती स्वर-लहरों को आकाश !

वह बल था
जो धरती से जन्मा था,
वह बल था
जो संघर्षों की ज्वाला से जन्मा था,
वह बल था
जो पीड़ित इंसानों के प्राणों से जन्मा था !

फिर सोचो, क्या दब सकता था ?
पिस्तौल, मशीनगनों से क्या मिट सकता था ?
बढ़ता रहा निरन्तर
श्रमिकों का जत्था सीना ताने,
होठों पर थे जिसके
आज़ादी के, जीवन के प्रेरक गाने !
जिन गानों में
दुनिया के मूक ग़रीबों की

आहें और कराहें थीं,
जिन गानों में
दुनिया के अनगिनती मासूमों के
जीवन की चाहें थीं !
आहें और कराहें कब दबती है ?
जीवन की चाहें कब मिटती हैं ?
टकराया है मानव जोंकों से
और भविष्यत् में भी टकराएगा !

वह निश्चय ही
सद्भावों को वसुधा पर लाएगा !
वह निश्चय ही
दुनिया में समता, शान्ति, न्याय का
झंडा ऊँचा रक्खेगा !
मानव की गरिमा को जीवित रक्खेगा !

1950

(48) ओ मज़दूर-किसानो!

कवि : ओ, मज़दूर - किसानो !
अपना पथ पहचानो !

श्रमजीवी गण : हुआ युगों से शोषण,
जकड़े अगणित बंधन !

बालक : अधनंगे हैं निर्धन !

औरतें : दुख और अभावों में
काट रहे हैं जीवन !

कवि : बदल चुका है जग में
आज ज़माना, मानो !
ओ, मज़दूर-किसानो !

अपना पथ पहचानो !

बालक : हम हैं सोये भूखे,
खा कुछ टुकड़े सूखे !

औरतें : स्वाभिमान खंडित
पग - पग अपमानित,
छाया तिमिर घना
जीवन भार बना !

कवि : अब हुआ नया प्रभात !
छिन्न अंध - ग्रस्त - रात !
अब हुआ नया प्रभात !

श्रमजीवी : यह सरमायादारी ?
यह क्रूर ज़मीदारी ?
.....
निर्दयी शिकारिन बन
धर कर रूप पिशाचिन

(समवेत) : टूटी हम पर !
टूटी हम पर !

कवि : अब भय की बात नहीं !
मिटने का उनका क्षण
आया है आज यहीं !
अब भय की बात नहीं !
जागो, जागो !
ओ, युग-युग से सोये

जन-जन के अरमानो !
ओ, मज़दूर - किसानो !

अपना पथ पहचानो !

सहगान : हाँ ,
दूर क्षितिज पर आशा के घन,
घिरता जाता प्रतिक्षण पूर्ण गगन !
नव-जीवन का संदेश सनातन
गूँज रहा जिससे जग का कण-कण !

कवि : लो, बंधन का भार ढहा जाता,
युग
मुक्त-नया-संगीत सुनाता !

सहगान : हम अभिनव रूप निहार रहे,
उजड़ा तन-मन आज सँवार रहे !
हम पहचान चलेंगे अपनापन,
कोई बाँध न पाएगा लोचन!
फूटा स्वर्ण-विहान !
हम मज़दूर-किसान !

1947

(49) अकेला नहीं हूँ !

अकेला नहीं हूँ,
अकेला नहीं हूँ,
ज़माना नया साथ है,
और मैं भी
बड़ी ही ख़ुशी से
सदा साथ उसके !

करोड़ों भुजाएँ
मुझे आज बल दे रही हैं,
अथक शक्ति मेरी
बिना रोक के ले रही हैं !

अनेकों क़दम गिर्द मेरे
निरंतर चले जा रहे हैं,
बढ़े जा रहे हैं !
निराशा नहीं है,
निराशा नहीं है,
किसी भी तरह की विवशता नहीं है !
रुकावट ठहरती न
जन-धार के सामने
सब उखड़ती चली जा रही हैं !

कि पिघला बरफ़
किस हिमालय-शिखर का ?
नयी भूमि को जो
बनाये चला जा रहा है,
निडर शान्त बस्ती
बसाये चला जा रहा है !
हरा, लाल, पीला, गुलाबी चमन
आज उसी ने खिलाया,
मनुज को मनुजता बतायी,
दबे चेहरे की / गिरे चेहरे की
चमक भी बढ़ायी !
उसी ज़िन्दगी से मिलाओ चरण !
और हँस-हँस
उसी ज़िन्दगी से लड़ाओ नयन !

1951

(50) जवानी

समय तो गुज़रता चला जायगा
पर, जवानी कभी भी मिटेगी नहीं !

करोड़ों युगों से
जवानी का दरिया

हज़ारों रुकावट मिटाकर
निरंतर बहा है,
व बहता रहेगा !

करोड़ों युगों से
जवानी का सरगम
नयी ज़िन्दगी का
नया गीत गाता रहा है,
व गाता रहेगा !

कि झंकार जिसकी
कभी भी दबेगी नहीं,
और
नभ में, दिशा में,
नगर में, डगर में,
बड़े शोर से गूँज
सबको जगाती रहेगी !

व सपनों की दुनिया
अँधेरे की दुनिया
सदा लड़खड़ाती रहेगी !
अँधेरा गिरेगा, अँधेरा मिटेगा,
कभी पर,
जवानी की ज्योति धुँधली पड़ेगी नहीं !

समय तो गुज़रता चला जायगा
पर, जवानी कभी भी मिटेगी नहीं !
1951

(51) ज्योति-पर्व

मिट्टी के लघु-लघु दीपों से
जगमग हर एक भवन !

अँधियारे की लहरों से भूमि भरी,
पर, उस पर तिरती झलमल ज्योति-तरी,
    जलना है, चाहे हो जाये
    तारक-शशि हीन गगन !

जग पर छायी धूमिल वाष्प असुन्दर,
पर, बहता है अविरल स्नेह-समुन्दर,
    युग के मन-मरुथल में तुमको
    रहना है भाव-प्रवण !

विशृंखल तेज़ प्रभंजन से संसृति,
पर, मुसकाती संग नयी बन आकृति,
    टूटेगा बाँध प्रलय का जब
    हर नूतन सृष्टि चरण !

कोलाहल हर कोने से फूट रहा,
अब तो सपनों का बंधन टूट रहा,
    खो जाएगा नव-जीवन की
    हलचल में क्षीण मरण !
1950

(52) कवि ‘निराला’ के प्रति

नवीन भावना व कल्पना-प्रसूत काव्य के
प्रवीण अग्रदूत तुम !
प्रवाह-धार-सी उठान गीत की
कि निर्विवाद शक्ति की प्रतीक
एक-एक पंक्ति,
एक-एक शब्द !

हो कहीं बड़े उदार
मधु बहार मय ग़ज़ल बटोर
गा रहे
मधुर स्वतंत्र कोकिला सदृश !
कहीं-कहीं बड़े कठोर
घोर वज्रपात-से सशक्त
गीत गा रहे !

जगा मनुज जिन्हें विलोक
शोक-भाव, आत्मग्लानि से उठा !
चरण नवीन-काव्य के
चले नयी डगर ;
खुले नये अधर,
मिले नये विचार,
मुग्ध जग निहार !
पा अमोल फूल-बोल
मुग्ध काव्य-वाटिका !

प्रणाम लो !
अमर कला-जनक,
समस्त जन-समाज का
प्रणाम लो!
1948

(53) साँझ

उस ऊँचे टीले पर
कुछ सहमी-सी
काली, नंगी, अनगढ़ चट्टान पड़ी है !
सहमी-सी
शायद, उस पर अब कोई आकर लेटेगा !
कोई ?
हाँ, हो सकता है

चाँद-सितारों का प्रेमी हो,
कवि हो,
प्रिय से बिछुड़ा हो,
या कि जगत से रूठा हो !

टीले के चारों ओर
बड़ी दूर-दूर तक
भूरी मिट्टी पर
हरा-हरा क़ालीन बिछा है ;
क़ालीन नहीं हो तो
कम्बल हो सकता है
जिसके अन्दर
कोई भी छिप सकता है !

पास सरोवर के
नरम हृदय की लहरों पर
सूरज की ठंडी किरणें
आलिंगन ढीला करती-सी
धीमे-धीमे
कल आने की बात
सुनाती हैं
‘देखो,
जैसे वह विहग-यूथ उड़ा आता है
हम भी आएंगे !
अब तुम सो जाओ’ !

फिर झोंका आया मंद हवा का
जैसे कोई रमणी
जॉरजेट की साड़ी पहने
निकली हो अभी निकट से !

और देखते ही

इस मन-मोहक दृश्य-चित्र पर
क्या कहें !
किस फूहड़ चित्रकार ने
काले रंग का ब्रुश
आहिस्ता-आहिस्ता
कितनी बेरहमी से चला दिया !

फिर क्या होता है
चाहे कितने ही छींटे
व्योम पर सफ़ेदी के फेंकें !

1952

(54) नयी ज़िन्दगी

(रंगमंच पर एक युवक, जिसके रूखे केशों की लटें मुख के आस-पास गिरी हुई हैं, दर्द भरी आवाज़ में गाता है। मंच पर अँधेरा है, केवल युवक पर पीली-पीली रोशनी पड़ रही है। जैसे ही वह गान प्रारम्भ करता है, पर्दे के पीछे से हल्की-हल्की वाद्य-ध्वनि होती है ; जो उसकी रागिनी से मेल खाती हुई है

कितनी बेबसी के बीच गुज़री जा रही है ज़िन्दगी !

हमेशा एक-से दिन, एक-सी रातें,
वही जीवित अभावों की सड़ी बातें,
हृदय पर कर रहीं आघात,
कि कितनी दूर है बरसात ?
प्राणों का अधूरा गीत रह-रह गा रही है ज़िन्दगी !
कितनी बेबसी के बीच गुज़री जा रही है ज़िन्दगी !

वही सपने पुराने कर रहे हैं छल,
वही कंपन, वही धड़कन, वही हलचल,
हृदय पर कर रही अधिकार,
कि कितनी दूर नव-संसार ?

बारम्बार जीवन के वही क्षण पा रही है ज़िन्दगी !
कितनी बेबसी के बीच गुज़री जा रही है ज़िन्दगी !

(पर्दे के पीछे से वाद्य-ध्वनि ज़रा कुछ तेज़ हो जाती है और साथ में नारी-स्वर भी उसी लय में सुनायी देने लगता है जो अभी अस्पष्ट और धीमा है। युवक का गान चलता रहता है

बड़ी सूखी हवाएँ आसमानों पर,
चलीं आवाज़ करतीं आशियानों पर,
हृदय में काँपता विश्वास,
कि कितनी दूर है मधुमास ?
पतझर बीच हलकी साँस ले मुरझा रही है ज़िन्दगी !
कितनी बेबसी के बीच गुज़री जा रही है ज़िन्दगी !

(वाद्य-ध्वनि और धीमी-धीमी आवाज़ के साथ, अब पास आते हुए नूपुरों की झनकार भी सुनायी देती है। युवक का स्वर कुछ धीमा पड़ जाता है, पर गान का क्रम बिना टूटे चलता रहता है

थकावट के नशे से चूर सारा तन,
बड़ा दुर्बल, बड़ा मजबूर, हारा मन,
हृदय में रह गये अरमान,
कि कितनी दूर है मुसकान ?
छाया हड्डियों की बन अकेली छा रही है ज़िन्दगी !
कितनी बेबसी के बीच गुज़री जा रही है ज़िन्दगी !

(मंच पर एक दमकती हुई नारी - नयी ज़िन्दगी की तसवीर बन कर नृत्य करती आती है ; जिसके तन पर रंगीन प्रकाश पड़ रहा है। युवक चकित होकर उसकी ओर देखता है, उसका गान रुक जाता है। इसी समय पृष्ठभूमि का यह स्वर प्रखर हो उठता है

भविष्यत् विश्व का नव-लक्ष्य सुन्दर है,
मगर अभिनव दिशा का पथ न बेहतर है,
बिछे कंटक कठिन, दुर्दम ;
क़दम पर गिर रहे हरदम,
कितनी आफ़तों को चीर हँसती आ रही है ज़िन्दगी !
गहरे इस अँधेरे में किरन बरसा रही है ज़िन्दगी !

('हँसती आ रही...' शब्दों पर नारी का चेहरा मुसकान से भर जाता है। युवक पृष्ठभूमि के स्वरों को दोहराता हुआ 'नयी ज़िन्दगी' की ओर बढ़ता है। उसके रुखे केश हवा में उड़ने लगते हैं और 'नयी ज़िन्दगी' उसका हाथ पकड़ लेती है। एक क्षण तक वाद्य-ध्वनि, नूपुरों की झनकार और गीत के स्वर गूँजते रहते हैं।)

1948

(55) ज्वार और नाविक

नाव नाविक खे रहा है !

सिंधु-उर को चीर अविरल
दौड़तीं लहरें भयंकर,
सनसनाती हैं हवाएँ
उग्र स्वर से ठीक सर पर,
छा रहा नभ में सघन तम
इस क्षितिज से उस क्षितिज तक
पास हिंसक जंतु कोई
साँस लम्बी ले रहा है !

दूर से आ मेघ गहरे
घिर रहे क्षण-क्षण प्रलय के,
घोर गर्जन कर दबाते
स्वर सबल आशा विजय के,
घूरती अवसान-बेला
मृत्यु से अभिसार है, पर
अटल साहस से सतत बढ़

यह चुनौती दे रहा है !

1948

(56) जिजिविषा

जी रहा है आदमी
प्यार ही की चाह में !

पास उसके गिर रही हैं बिजलियाँ,
घोर गहगह कर घहरतीं आँधियाँ,
पर, अजब विश्वास ले
सो रहा है आदमी
कल्पना की छाँह में !
जी रहा है आदमी
प्यार ही की चाह में !

पर्वतों की सामने ऊँचाइयाँ,
खाइयों की घूमती गहराइयाँ,
पर, अजब विश्वास ले
चल रहा है आदमी
साथ पाने राह में!
जी रहा है आदमी
प्यार ही की चाह में !

बज रही हैं मौत की शहनाइयाँ,
कूकती वीरान हैं अमराइयाँ,
पर, अजब विश्वास ले
हँस रहा है आदमी
आँसुओं में, आह में!
जी रहा है आदमी
प्यार ही की चाह में!

1955

10

संतरण

रचना-काल सन् 1956-1962
प्रकाशन सन् 1963

कविताएँ

1 ओ भवितव्य के अश्वो !
2 आस्था
3 प्रधूपिता से
4 आस्था का उपहार
5 आदमी और स्वप्न
6 जीवन
7 निवेदन
8 प्रतिकार्य
9 टूटना मत
10 अनुबोध
11 विडम्बना
12 तुम नहीं पहचान पाओगे ...
13 जीवन : एक अनुभूति
14 दोपहरी
15 एक साँझ
16 रात बीतेगी
17 अनचहा
18 क्या पता था
19 राज़ क्या है ?
20 अनाहूत स्थितियों से
21 प्रार्थना
22 अंगीकृत
23 अविश्वसनीय
24 पुनर्जन्म
25 कौन हो तुम
26 याचना
27 स्वीकार लो
28 युगों के बाद फिर
29 अभिरमण
30 उषा-दूतिका
31 फागुन में सावन
32 धरती का गीत
33 दृष्टि
34 कला-साधना
35 स्वर्ण की सौगात
36 भोर का गीत
37 माँझी
38 कौन तुम ...
39 गीत में तुमने सजाया
40 मुसकराये तुम ...

41 हे विधना
42 उषा रानी
43 सुहानी सुबह
44 लघु जीवन
45 फाग
46 वर्षा : तीन सुभाषित
47 दीप जलाओ
48 दीप-माला
49 अभिषेक
50 दीप धरो
51 रूपासक्ति
52 मोह-माया
53 रात बीती ...
54 व्यथा-बोझिल रात
55 अगहन की रात
56 दूर तुम
57 प्रिया से
58 बिरहिन
59 प्रतीक्षा
60 साध
61 स्नेह भर दो
62 रतजगा
63 वंचना
64 अब नहीं
65 गाओ
66 भोर होती है !
67 मच्छरों का संगीत
68 भूमिका
69 अंकुर
70 थमना कैसा ?
71 रात भर
72 अंधकार
73 लक्ष्य
74 आलोक
75 शुभकामनाएँ
76 दीप जलता है
77 नया भारत
78 एशिया
79 माओ और चाऊ के नाम
80 रंग बदलेगा गगन !

(1) ओ भवितव्य के अश्वो!

ओ भवितव्य के अश्वो !
तुम्हारी रास
हम
आश्वस्त अंतर से सधे
मज़बूत हाथों से दबा
हर बार मोड़ेंगे !

वर्चस्वी,
धरा के पुत्र हम
दुर्धर्ष,
श्रम के बन्धु हम
तारुण्य के अविचल उपासक
हम तुम्हारी रास
ओ भवितव्य के अश्वो !
सुनो, हर बार मोड़ेंगे !

ओ नियति के स्थिर ग्रहो !
श्रम-भाव तेजोदृप्त
हम
अक्षय तुम्हारी ज्योति
ग्रस कर आज छोड़ेंगे !
तितिक्ष अडिग
हमें दुर्ग्रह नहीं अब
अंतरिक्ष अगम्य !
निश्चय
ओ नियति के पूर्व निर्धारित ग्रहो !
हम....
हम तुम्हारी ज्योति
ग्रस कर आज छोड़ेंगे !

ओ अदृष्ट की लिपियो !
कठिन प्रारब्ध हाहाकार के
अविजेय दुर्गो !
हम उमड़ श्रम-धार से
हर हीन होनी की
लिखावट को मिटाएंगे,
मदिर मधुमान श्रम संगीत से
हम
हर तबाही के अभेदे दुर्ग तोड़ेंगे !
ओ भवितव्य के अश्वो !
तुम्हारी रास मोड़ेंगे !
1959

(2) आस्था

सींचो !
कण-कण को सींचो !
हर सूखे बिरवे को पानी दो,
टूटे उखड़े झाड़ों को
अभिनव बल
फिर-फिर बढ़ने की तेज़ रवानी दो
हर सूखे बिरवे को पानी दो !

नंगी-नंगी शाखों को
जल-कण मुक्ता भूषण दो
चिर बाँझ धरा को
जल का आलिंगन दो
शीतल आलिंगन दो !
शायद, गहरी-गहरी परतों के नीचे
जीवन सोया हो,
तम के गलियारों में खोया हो !

सींचो

अन्तस् की निष्ठा से सींचो,
शायद, चट्टानों को फोड़ कहीं,
नव अंकुर डहडहा उठें,
बाँझ धरा का गर्भस्थल
नूतन जीवन से कसमसा उठे !

सींचो
कण-कण को सींचो !
हर मिट्टी में गर्मी है
हर मिट्टी पूत प्रसव-धर्मी है !
1962

(3) प्रधूपिता से

ओ विपथगे !
जग-तिरस्कृत,
आ
माँग को
सिन्दूर से भर दूँ !

सहचरी ओ !
मूक रोदन की
कंठ को
नाना नये स्वर दूँ !

ओ धनी !
अभिशप्त जीवन की
आ
तुझे उल्लास का वर दूँ !

ओ नमित निर्वासिता !
आ
आ

नील कमलों से
घिरा घर दूँ !

वंचिता ओ !
उपहसित नारी
अरे आ
रुक्ष केशों पर
विकंपित
स्नेह-पूरित
उँगलियाँ धर दूँ !
1959

(4) आस्था का उपहार

भाग्य से
अथवा जगत से
हर प्रताड़ित व्यक्ति को
आजन्म संचित स्नेह मेरा
है समर्पित !

लक्ष्य हैं जो
सृष्टि के अव्यक्त निर्मम हास के
या जगत उपहास के
प्राण गौरव की सुरक्षा के लिए
लघु गेह मेरा
है समर्पित !

ओ, विश्व भर के
पददलित पीड़ित पराजित मानवो !
जीवन्त नव आस्था
नये विश्वास के
मद महकते उत्फुल्ल गुलदस्ते
तुम्हारे साधु स्वागत में

समर्पित हैं !

जीवन को सजा लो,
लोक की मधु-गंध
प्राणों में बसा लो !
1959

(5) आदमी और स्वप्न

आदमी का प्यार सपनों से
सनातन है !

मृत्यु के भी सामने
वह, मग्न होकर देखता है स्वप्न !
सपने देखना, मानों,
जीवन की निशानी है ;
यम की पराजय की कहानी है !

सपने आदमी को
मुसकराहटचाह देते हैं,
आँसूआह देते हैं !

हृदय में भर जुन्हाई-ज्वार,
जीने की ललक उत्पन्न कर,
पतझार को
मधुमास के रंगीन-चित्रों का
नया उपहार देते हैं !
विजय का हार देते हैं !
सँजोओ, स्वप्न की सौगात,
महँगी है !
मिली नेमत,
इसे दिन-रात पलकों में सहेजो !
'स्वप्नदर्शी' शब्द

परिभाषा 'मनुज' की,
गति-प्रगति का
प्रेरणा-आधार;
संकट-सिंधु में
संसार-नौका की
सबल पतवार ;
गौरवपूर्ण सुन्दरतम विशेषण।
स्वप्न-एषण और आकर्षण
सनातन है, सनातन है !
आदमी का प्यार सपनों से
सनातन है !
1958

(6) जीवन

जीवन हमारा फूल हरसिंगार-सा
जो खिल रहा है आज,
कल झर जायगा !

इसलिए,
हर पल विरल
परिपूर्ण हो रस-रंग से,
मधु-प्यार से !
डोलता अविरल रहे हर उर
उमंगों के उमड़ते ज्वार से !

एक दिन, आख़िर,
चमकती हर किरण बुझ जायगी...
और
चारों ओर
बस, गहरा अँधेरा छायगा !
जीवन हमारा फूल हरसिंगार-सा
जो खिल रहा है आज,

कल झर जाएगा !

मत लगाओ द्वार अधरों के
दमकती दूधिया मुसकान पर,
हो नहीं प्रतिबंध कोई
प्राण-वीणा पर थिरकते
ज़िन्दगी के गान पर !

एक दिन
उड़ जायगा सब ;
फिर न वापस आयगा !
जीवन हमारा फूल हरसिंगार-सा
जो खिल रह है आज,
कल झर जायगा !
1959

(7) निवेदन

फूल जो मुरझा रहे
जग-वल्लरी पर
      अधखिले
कारण उसी का खोजता हूँ !

हे प्राण !
मुझको माफ़ करना
यदि तुम्हारे गीत कुछ दिन
मैं न गाऊँ !
स्वर्ण आभा-सा
सुवासित तन तुम्हारा देख
अनदेखा करूँ,
छवि पर न मोहित हो
तनिक भी मुसकराऊँ !

फूल जब मुरझा रहे
वसुधा बनी विधवा
सुमुखि !
फिर अर्थ क्या शृंगार का,
पग-नूपुरों की गूँजती झंकार का ?

हर फूल खिलने दो ज़रा,
डालियों पर प्यार हिलने दो ज़रा !
1957

(8) प्रतिकार्य

रे हृदय
उत्तर दो
जगत के तीव्र दंशन का
राग-रंजित,
सोम सुरभित साँस से !

स्वीकार्य
जीवन-पंथ पर...
दर्द हर उपेक्षा का
शांत उज्ज्वल हास से !

आतिथेय
घन तिमिर के
द्वार पर
स्वर्ण किरणों की
असंशय आस से !

आराध्य
वज्रघाती देव
प्राण के संगीत से,
प्रेमोद्गार से

अभिरत रास से !

रे हृदय !
उत्तर दो
जगत के क्रूर वंचन का
स्नेहल भाव से,
विश्वास से !
1960

(9) टूटना मत

रे हत हृदय,
टूटना मत !
विपद् घोर-घन-चोट सहना !
दहकती
दुखों की प्रबल भट्टियों में
सतत मूक दहना !
अकेले
गरल-तप्त-धारों-उमड़ती
नदी में निरन्तर, निराक्रांत बहना !

अनादृत हृदय,
टूटना मत !

अँधेरी-अँधेरी घटाएँ,
सबल सनसनाती हवाएँ...!
विवह लहरता,
दबा, त्रस्त वातावरण !
क्रूर,
जैसे हुआ हो अभी,
हाँ, अभी,
राम,
सीता-हरण !

रे हृदय
टूटना मत !

नहीं दूर अब और
अभिनव, अनागत सुबह,
रुक्ष, उन्मन,
करुण, कृष्ण
छाया न ग्रस ले उसे,
मुसकराकर
बढ़ो,
हे हृदय,
सार्थ करने सुलह
पास
अभिनव, अनागत सुबह !
1959

(10) अनुबोध

गहन अंतर में
पीर भर लो !
तरल आँखों में
नीर भर लो !

पीर ही देगी तुम्हारा साथ
थाम लो इसका
करुण-निधि-रेख अंकित हाथ,
हिम-शीत प्यारा हाथ !
रे यही देगा तुम्हारा साथ
वर लो !

सांध्य-जीवन के
थके बोझिल क्षणों में
कुहर-गुंठित सजल धूमिल क्षणों में

तम घिरे घर में
पीर वर लो !
लौह अंतर में
पीर भर लो !
अचल आँखों में
नीर भर लो !

ले
असीमित क्षार-सागर
वज्र-विज्ञापित-बवण्डर
अतिथि बन
मेघ आये हैं,
तुमको घेर छाये हैं
प्यार कर लो !
वेदना उपहार लाये हैं
सहज स्वीकार कर लो !
टूटते कमज़ोर कंधों पर
पर्वतों का भार
धर लो !
गहन अंतर में
पीर भर लो !
तरल आँखों में
नीर भर लो !
1960

(11) विडम्बना

हमने
जीवन भर
हाँ,
जीवन भर
मन की हर क्यारी में
सहज खिलाये
भावों के सुरभित फूल !

हमने
जीवन भर
हाँ,
जीवन भर
मन के निस्सीम गगन में
उन्मुक्त उड़ाये
अनिंद्य कल्पनाओं के
बहुरंगी दिव्य दुकूल !

हमने
जीवन भर
हाँ,
जीवन भर
मन की गहरी-से-गहरी
उपत्यका में
वैदग्ध्य विचारों के
सूरज चाँद उगाये
कर दूर तमस आमूल !

पर,
हाय विधाता !
यह कैसी अद्‌भुत भूल ?
घेरे तन को
अनगिनत नागफाँस नुकीले शूल,
अविराम थपेड़े झंझा के
उपहारों में देते
वंध्य विषैली धूल !

1959

(12) तुम नहीं पहचान पाओगे

एकरसता, एकस्वरता
बन गया है नाम जीवन का,
विषैले पन्नगों से बद्ध
मानों वृक्ष चंदन का !

सुबह होती
उदासी की विकल किरणें लिए,
अभावों के धधकते सूर्य की
आकुल विफल किरणें लिए !
तन श्लथ अलस-आहत
विरागी प्रेत-सा मन श्लथ
विगत विक्षत,
दिवस विकलांग-सा कंपित
विखंडित रथ लिये
सुनसान बीहड़ से
असह चिर वेदना का भार ले
संध्या निशा के गर्त में
जब डूब जाता है
तुम नहीं पहचान पाओगे
अभागा प्राण कितना ऊब जाता है !

रात आती है
कि मानों निठुर छलना
बन वधू साकार आती है,
रँगीले झिलमिलाते
स्वप्न परदों से
नवेली झाँक कर
सौगात तीखी वंचना की
गोद में बस डाल जाती है !
अछूती भावनाएँ तरल लहरों-सी

कड़ी चट्टान से टकरा
दरद का ज्वार लाती हैं !

बीतता है इस तरह जीवन
लिए बस
एकरसता एकस्वरता का
करुण संसार,
दुर्लभ
मूर्च्छना संगीत,
पुलकित स्वर,
सुवासित हर्ष,
इन्द्रधनुषी प्यार !
1959

(13) जीवन : एक अनुभूति

बिखरता जा रहा सब कुछ
सिमटता कुछ नहीं !

ज़िन्दगी :
एक बेतरतीब सूने बंद कमरे की तरह,
दूर सिकता पर पड़े तल-भग्न बजरे की तरह,
हर तरफ़ से कस रहीं गाँठें
सुलझता कुछ नहीं !

ज़िन्दगी क्या ?
धूमकेतन-सी अवांछित
जानकी-सी त्रस्त लांछित,
किस तरह हो संतरण
भारी भँवर, भारी भँवर !
हो प्रफुल्लित किस तरह बेचैन मन
तापित लहर, शापित लहर !

ज़िन्दगी :
बदरंग केनवस की तरह
धूल की परतें लपेटे
किचकिचाहट से भरी,
स्वप्नवत है
वाटिका पुष्पित हरी !
हर पक्ष भावी का भटकता है
सँभलता कुछ नहीं !

पर, जी रहा हूँ
आग पर शय्या बिछाये !
पर, जी रहा हूँ
शीश पर पर्वत उठाये !
पर, जी रहा हूँ
कटु हलाहल कंठ का गहना बनाये !
ज़िन्दगी में बस
जटिलता ही जटिलता है
सरलता कुछ नहीं !
1959

(14) दोपहरी

दोपहरी का समय
अनमना...... उदास,
मैं नहीं तुम्हारे पास !

एकाकी
तंद्रिल स्वप्निल
जोह रहा अविरल बाट
खोल कक्ष-कपाट !

चिलचिलाती धूप
बोझिल बनाती और आँखों को !

साँय-साँय करती
लम्बे-लम्बे डग भरती
हवा-दूतिका
संदेश तुम्हारा कहती
मौन !

तभी मैं उठ
भर लेता बाँहों में
कर लेता स्वीकार
सरल शीतल आलिंगन
आगमन आभास तुम्हारा पाकर !
ढलती जाती दोपहरी
होती जाती अन्तर-व्यथा
गहरी....गहरी....गहरी !
1957

(15) एक साँझ

जीवन
अर्थ-सूनापन !
नहीं कुछ भी नया
सदा-सा
आज भी दिन ढल गया !

भटकती धूप
आयी,
कुछ क्षण
चाहा बिताएँ साथ
पर, अँधेरा ही
आया हमारे हाथ !

डोलते आये विहंगम,
चित्रवत्

देखते केवल रहे हम !
नहीं कोई रुका;
सदा-सा
एकरस बहता रहा,
बोझिल मन थका
सहता रहा !
जीवन
अर्थ-सूनापन,
सूनापन !
1960

(16) रात बीतेगी

अँधेरा....
रात गहरी है,
रात बहरी है !

बहुत समझाया कि
सो जा !
रे मन
थके ग़मगीन मन
ज़िन्दगी के खेल में हारे हुए
दुर्भाग्य के मारे हुए
रे दरिद्र मन
सो जा !

रात सोने के लिए है
सपने सँजोने के लिए है,
कुछ क्षणों को
अस्तित्व खोने के लिए है,
तारिकाओं से भरी यह रात
परियों-साथ सोने के लिए है !
सो !

दर्द है,
और सूनी रात बेहद सर्द है !

जीवन नहीं अपना रहा,
अब न बाक़ी देखना सपना रहा !

रात...
जगने के लिए है !
..... बेचैनियों की भट्ठियों में
फिर-फिर सुलगने के लिए है !

रात....
गहरी रात
बहरी रात
हमने बिता दी
जग कर बिता दी !

कल फिर यही होगा
अँधेरा आयगा !
खामोश
धीरे, बड़े धीरे
कफ़न-सा
फिर अँधेरा आयगा !
रे मन
जगने के लिए
चुपचाप
आँखें बन्द कर लेना,
भीतर सुलगने के लिए
ज़िन्दगी पर राख धर लेना !

रात
काली रात

बीतेगी .... बीतेगी !

1961

(17) अनचाहा

केसर-सी मधु-गंधि
कुमारी अभिलाषाएँ,
अन्तरतम में संचित
युगों सहेजी आशाएँ
परित्यक्ता हैं !

निर्मल भोली
लगता था : मेरी हो लीं !
नेह भरी दिन भर डोलीं,
यामा में
मदहोश गुलाबी आँखें खोलीं !
रजनी-हासा
रजनी-गंधा
परित्यक्ता हैं,
आज सभी परित्यक्ता हैं !

ओ रजनी-हासा !
प्यासा.... प्यासा !
चिर साधों के उत्सव
आगत नव जीवन के
स्वागत-पर्व
सभी
गर्भ-क्षय-से पीड़क,
हीरक सपनों की रातें,
मधुजा-सी बातें
परित्यक्ता हैं !

मौन

मन-मैना,
बरसे नैना !

मधु-माधव बीत गया,
ओ ! मधुपायी
मधुरस रीत गया !

1961

(18) क्या पता था

छू रही थी रवि-किरण
      ऊँचाइयों को,
सृष्टि की गहराइयों को,

नव-आलोक से परिपूर्ण था
      जीवन-गगन !
पहने धरा थी
स्वर्ण के अनमोल अभिनव आभरण,
गूँजते थे हर दिशा में
हर्ष-गीतों के चरण !

क्या पता था
एक दिन ऐसे अचानक मेघ छाएंगे
बिना कारण
गरज बिजली गिराएंगे !
और हम
असह उर-वेदना ले
मूक भटकेंगे
अँधेरे में, अँधेरे में !

नियति लेगी छीन
भू-सौभाग्य,
विक्षत कर

महकते फूल !
आँचल में भरेगी निर्दयी,
हा, इस तरह रे धूल !
अन्तर में चुभाएगी
नुकीले शूल !

और हम
अर्थी उठा विश्वास की
मस्तक झुकाये
शोक से बोझिल हृदय ले
अग्नि-लपटों को समर्पित कर
अकेले लौट आएंगे,
व जीवन भर
विवश हो दोहराएंगे
करुण गीतों के चरण !
1959

(19) राज़ क्या है ?

हवा सर्द है !
रात ख़ामोश है
जिस तरह चुप तुम्हारे अधर !

बात क्या है ?
राज़ क्या है ?
कि जो सो गयी हर लहर !

दे रही नींद पहरा,
घिर गया तिमिर गहरा,
उठ रहा दर्द है !
हवा सर्द है !
1958

(20) अनाहूत स्थितियों से

जीवन दिया है
तो
प्यार भी दो !
प्यास दी है
रसधार भी दो !

जब दिया है रूप
आत्मा को
सुघड़ तन-शृंगार भी दो !
उर दिया है
भावना का ज्वार भी दो !

मत करो वंचित
सहज अनुभूतियों से
इस तरह -
जीवन कि जीना बोझ बन जाए,
सब उम्र कट जाए
बिन गीत गाए
स्नेह-सुषमा का
सुखद सावन सजाए !

ज्योति का आकाश
आँखों को दिया
तो
अनगिनत सपने सुहाने
झूलने दो !
दर्द आँहों से
तनिक तो
चेतना को भूलने दो !

मत कसो
मजबूरियों की रस्सियों से
इस तरह
पल भर
फड़फड़ा भी जो न पाएँ
वासनाओं के विखंडित पंख !
अनपेक्षित घृणा की
कील मत ठोंको
धड़कते वक्ष पर !
अंगार मत फेंको
सरल आसक्त आँखों पर !

जीवन दिया है
तो
लेने दो
हर फूल की मधु गंध,
जीवन दिया है
तो
सोने दो
हर लता के अंक में निर्बन्ध !
1958

(21) प्रार्थना

अँधेरा दो
पराजय का अँधेरा दो
निराशा का सघन-गहरा अँधेरा दो
पर, विजय की आस मत छीनो
सुबह की साँस मत छीनो,
नये संसार के
सुख-साध्य सपनों के सहारे
करुण जीवन बिता लेंगे !
अभावों से भरा जीवन बिता लेंगे !

वंचना दो
प्रीत के हर प्रिय चरण पर वंचना दो
मृग-तृषा-सी वंचना दो
पर, अधर के गीत मत छीनो
राग का संगीत मत छीनो,
सुधा-धर कंठ से
उर भावना-विश्वास धरती पर
कल्पनाओं के सहारे
विरस यौवन बिता लेंगे,
हर सजल सावन बिता लेंगे !
अकेला अनमना यौवन बिता लेंगे !
1960

(22) अंगीकृत

ओ विशालाक्षी
नील कंठाक्षी
शुभांगी !
शाप
जो तुमने दिया
अंगीकृत !

ओ पयस्विनी
कल्याणी !
विषज उपहार
जो तुमने दिया
स्वीकृत !
1960

(23) अविश्वसनीय

प्रेक्षागृह में
प्रेक्षक नहीं,
मात्र मैं हूँ !

मै
अभिनेता,
नायक !

जिसका जीवन
प्रहसन नहीं,
त्रासद.... शोकान्त !

मैं ही जीवन की
मुख्य-कथा का निर्माता
टूटे-स्वर से
गा....ता
समाधि गान !
जिसकी करुण तान
अनाकर्षक
रस विहीन !

मैं ही भोजक
भोज्य !
आदि... मध्य... अंत
विषाद सिक्त
नील तंतु से निर्मित,
बोझिल मंथर गति से विकसित !

पर,
मादक प्रकरी-सी
तुम कौन ?
रंभा ?
उर्वशी ?
एकरस कथानक में अचानक !
यह सब 'सहसा' है,
अनमिल

अस्वाभाविक है !
1961

(24) पुनर्जन्म

जीवन का आरम्भ :
फिर से।
उसमें सन्दर्भ न हो,
पूर्वा पर कोई संबंध न हो !

क्या वर्तमान को गत क्षण प्रदेय ?
जब दुष्कर पा लेना जीवन का प्रमेय ?

जीवन : नहीं पहेली ?
उसका अर्थ सरल हो,
उसकी भाषा प्रांजल हो,
उसमें वांछित
कोई अन्तर-कथा नहीं,
रिसते घावों की सोयी व्यथा नहीं !
जितना खोजोगे : भटकोगे,
जितनी संगति जोड़ोगे : उलझोगे !

आगत पर
बेचैनी और उदासी का दामन ?
आस्था के शीश महल पर
संदेहों के पाहन ?
नहीं, नहीं !
1961

(25) कौन हो तुम?

अँधेरी रात के एकांत में
अनजान
दूरागत.....

किसी संगीत से मोहक
मधुर सद्-सांत्वना के बोल
विषधर तिक्त अंतर में
अरे ! किसने दिये हैं घोल ?

कौन ?
कौन हो तुम ?
अवसन्न जीवन-मेघ में
नीलांजना-सी झाँकतीं
आबंध वातायन हृदय का खोल !

सृष्टि की गहरी घुटन में,
दाह से झुलसे गगन में,
कौन तुम जातीं
सजल पुरवा सरीखी डोल ?

कौन हो तुम ?
कौन हो ?
संवेद्य मानस-चेतना को,
शांत करती वेदना को !
1959

(26) याचना

शैल हो तुम
हैं कसे सब अंग,
विकसित-वय भरे नव-रंग !
प्रत्यूष ने
जब स्वर्ण किरणों से छुए
सुगठित कड़े उन्नत शिखर
प्रति रोम रजताचल
गया सहसा सिहर,
द्रुत स्वेद-मंडित तन

द्रवित मन,
शीर्ष चरणों तक
हुई सद्-संचरित रति-रस लहर !

शैल हो तुम
नेह-निर्झर-धार धारित,
प्राण हरिमा भाव वासित !

एक कण प्रिय नेह का
एक क्षण सुख देह का
मन-कामना
वर दो !
अनावृत पात्र अन्तस्
भावना भर दो !
1960

(27) स्वीकार लो

मेरी कामनाएँ :
गगन के वक्ष पर झिलमिल
सितारों की तरह !

मेरी वासनाएँ :
हिमालय से प्रवाहित
वेगगा भागीरथी की
शुभ्र धारों की तरह !
मेरी भावनाएँ :
महकते-सौंधते
उत्फुल्ल पाटल से विनिर्मित
रूपधर सद्यस्क हारों की तरह !

तुम्हारी अर्चना आराधना में
समर्पित हैं।

अलौकिक शोभिनी !
रमनी सुनहरी दीपकलिका से
हृदय का कक्ष ज्योतित है !

इस जन्म में
स्वीकार लो
स्वीकार लो
मेरा अछूता प्यार लो !
1959

(28) युगों के बाद फिर...

युगों के बाद
सहसा आज तुम !
स्वप्न की नगरी बसाये
हाथ सिरहाने रखे सोयी हुई हो
बर्थ पर !
क्या न जागोगी ?
हुआ ही चाहता पूरा सफ़र....!

आँख खोलो
आँख खोलो
शब्द चाहे
एक भी मुझसे न बोलो !
देख,
फिर चाहे
बहाना नींद का भर लो ;

युगों के बाद फिर
पा रंग नव रस
खिल उठेगा
धूप मुरझाया कुसुम !
कितने दिनों के बाद

सहसा आज तुम !
1957

(29) अभिरमण

कल सुबह से रात तक
कुछ कर न पाया
कल्पना के सिंधु में
युग-युग सहेजी आस के दीपक
बहाने के सिवा !
हृदय की भित्ति पर
जीवित अजन्ता-चित्र... रेखाएँ
बनाने के सिवा !
किस क़दर
भरमाया
तुम्हारे रूप ने !
कल सुबह से रात तक
कुछ कर न पाया;
सिर्फ़
कल्पना के स्वर्ग में
स्वच्छंद सैलानी-सरीखा
घूमा किया !
नशीली-झूमती
मकरंद-वेष्टित
शुभ्र कलियों के कपोलों को
मधुप के प्यार से
चूमा किया !
किस क़दर
मुझको सताया है
तुम्हारे रूप ने !

कल सुबह से रात तक
कुछ कर न पाया

भावना के व्योम में
भोले कपोतों के उड़ाने के सिवा !
अभावों की धधकती आग से
मन को जुड़ाने के सिवा !

भटका किया,
हर पल
तुम्हारी याद में अटका किया !

किस क़दर
यह कस दिया तन मन
तुम्हारे रूप ने !
1958

(30) उषा-दूतिका

उषा का आगमन
रे रात सोये फूल अपनी गंध दो
जिससे किरन आए खिँची
पतली / सुनहली
बावली
फिर रंग अपना दो उसे
निश्छल हृदय का प्यार दो !
अंक भर-भर
मुग्ध
अपना लो !
साकार होगा हर सपन
अनुराग डूबी जब उषा का आगमन !
रे रात सोये फूल
अपनी गंध दो !
हर पाँखुरी के खोल
मुकुलित बंध दो !
1957

(31) फागुन में सावन

नव उत्साह भरे
हँसिया सान धरे
गेहूँ की सूखी बालें
काट रहा
भूखा-प्यासा कृषक-कुटुम्ब
बिना विलम्ब !
असमय
चपला-नर्तन घन-गर्जन
बूँदा-बाँदी,
माटी की सोंधी गंध महकती !
पर, स्वागत पर प्रतिबन्ध,
प्रकृति मनोरम
पर, वर्षा-देव हुए हैं अंध,
तभी बेमौसम
फागुन में सावन !
1957

(32) धरती का गीत

हमें तो माटी के कन-कन से मोह है
असम्भव, सचमुच, उसका क्षणिक बिछोह है,
निरंतर गाते हम उसके ही गीत हैं
हमें तो उसके अंग-अंग से प्रीत है !
1956

(33) दृष्टि

माना, हमने धरती से नाता जोड़ा है,
पर, चाँद-सितारों से भी प्यार न तोड़ा है,
सपनों की बातें करते हैं हम, पर उनको
सत्य बनाने का भी संकल्प न थोड़ा है !
1957

(34) कला-साधना

हर हृदय में
स्नेह की दो बूँद ढल जाएँ
कला की साधना है इसलिए !

गीत गाओ
मोम में पाषाण बदलेगा,
तप्त मरुथल में
तरल रस ज्वार मचलेगा !
गीत गाओ
शांत झंझावात होगा,
रात का साया
सुनहरा प्रात होगा !

गीत गाओ
मृत्यु की सुनसान घाटी में
नया जीवन-विहंगम चहचहाएगा !
मूक रोदन भी चकित हो
ज्योत्स्ना-सा मुसकराएगा !

हर हृदय में
जगमगाए दीप
महके मधु-सुरभि चंदन
कला की अर्चना है इसलिए !
गीत गाओ
स्वर्ग से सुंदर धरा होगी,
दूर मानव से जरा होगी,
देव होगा नर,
व नारी अप्सरा होगी !

गीत गाओ

त्रस्त जीवन में
सरस मधुमास आ जाए,
डाल पर, हर फूल पर
उल्लास छा जाए !
पुतलियों को
स्वप्न की सौगात आए !
गीत गाओ
विश्व-व्यापी तार पर झंकार कर !
प्रत्येक मानस डोल जाए
प्यार के अनमोल स्वर पर !

हर मनुज में
बोध हो सौन्दर्य का जाग्रत
कला की कामना है इसलिए !

1957

(35) स्वर्ण की सौगात

स्वर्ण की सौगात लायी भोर !

री जगो कलियो ! उठो उपहार आँचल में भरो
सज सुनहरे रूप में, मधु भाव पाटल में भरो
भर नया उन्मेष अंगों में
झूम लो नव-नव उमंगों में
गंधवह शीतल तरंगों में
प्रीति-पुलकित हर लता चितचोर !
खोल दो अंतर झरोखे द्वार वातायन सभी
अब नहीं ऐसे अँधेरे में घिरे आनन कभी
स्वर्ण-सागर में नहाओ रे
आभरण से तन सजाओ रे
नव प्रभाती गीत गाओ रे
झमझमा कर नाच ले मन-मोर !

1959

(36) भोर का गीत

भोर की लाली हृदय में राग चुप-चुप भर गयी !

जब गिरी तन पर नवल पहली किरन
हो गया अनजान चंचल मन-हिरन
प्रीत की भोली उमंगों को लिए
लाज की गद-गद तरंगों को लिए
प्रात की शीतल हवा ; आअंग सुरभित कर गयी !

प्रिय अरुण पा जब कमलिनी खिल गयी
स्वर्ग की सौगात मानों मिल गयी,
झूमती डालें पहन नव आभरण
हर्ष पुलकित किस तरह वातावरण
भर सुनहरा रंग ऊषा कर गयी वसुधा नयी !

1959

(37) माँझी

साँझ की बेला घिरी, माँझी !

अब जलाया दीप होगा रे किसी ने
भर नयन में नीर,
और गाया गीत होगा रे किसी ने
साध कर मंजीर,
मर्म जीवन का भरे अविरल बुलाता
सिन्धु सिकता तीर,
स्वप्न की छाया गिरी, माँझी !

दिग्वधू-सा ही किया होगा
किसी ने कुंकुमी शृंगार,
झिलमिलाया सोम-सा होगा
किसी का रे रुपहला प्यार,

लौटते रंगीन विहगों की दिशा में
मोड़ दो पतवार,
सृष्टि तो माया निरी, माँझी !

1959

(38) कौन तुम

कौन तुम अरुणिम उषा-सी मन-गगन पर छा गयी हो ?

लोक-धूमिल रँग दिया अनुराग से,
मौन जीवन भर दिया मधु राग से,
दे दिया संसार सोने का सहज
जो मिला करता बड़े ही भाग से,
कौन तुम मधुमास-सी अमराइयाँ महका गयी हो ?

वीथियाँ सूने हृदय की घूम कर,
नव-किरन-सी डाल बाहें झूम कर,
स्वप्न छलना से प्रवंचित प्राण की
चेतना मेरी जगायी चूम कर,
कौन तुम नभ-अप्सरा-सी इस तरह बहका गयी हो ?

रिक्त उन्मन उर-सरोवर भर दिया,
भावना संवेदना को स्वर दिया,
कामनाओं के चमकते नव शिखर
प्यार मेरा सत्य शिव सुन्दर किया,
कौन तुम अवदात री ! इतनी अधिक जो भा गयी हो ?

1958

(39) गीत में तुमने सजाया

गीत में तुमने सजाया रूप मेरा
मैं तुम्हें अनुराग से उर में सजाऊँ !

रंग कोमल भावनाओं का भरा

है लहरती देखकर धानी धरा
नेह दो इतना नहीं, सँभलो ज़रा
गीत में तुमने बसाया है मुझे जब
मैं सदा को ध्यान में तुमको बसाऊँ !

बेसहारे प्राण को निज बाँह दी
तप्त तन को वारिदों-सी छाँह दी
और जीने की नयी भर चाह दी
गीत में तुमने जतायी प्रीत अपनी
मैं तुम्हें अपना हृदय गा-गा बताऊँ !

1959

(40) मुसकराये तुम....

मुसकराये तुम, हृदय-अरविन्द मेरा खिल गया,
देख तुमको हर्ष-गदगद, प्राप्य मेरा मिल गया !

चाँद मेरे ! क्यों उठाया
इस तरह जीवन-जलधि में ज्वार रे ?
पा गया तुममें सहारा
कामिनी ! युग-युग भटकता प्यार रे !
आज आँखों में गया बस, प्रीत का सपना नया !

रे सलोने मेघ सावन के
मुझे क्यों इस तरह नहला दिया ?
क्यों तड़प नीलांजने !
निज बाहुओं में नेह से भर-भर लिया ?
साथ छूटे यह कभी ना, हे नियति ! करना दया !

1959

(41) हे विधना!

हे विधना ! मोरे आँगन का बिरवा सूखे ना !

यह पहली पहचान मिठास भरा,
रे झूमे लहराये रहे हरा,
हे विधना ! मोरे साजन का हियरा दूखे ना !

लम्बी बीहड़ सुनसान डगरिया,
रे हँसते जाए बीत उमरिया,
हे विधना ! मोरे मन-बसिया का मन रूखे ना !

कभी न जग की खोटी आँख लगे,
साँसत की अँधियारी दूर भगे,
हे विधना ! मोरे जोबन पर बिरहा ऊखे ना !

1958

(42) उषा रानी

नील नभ-सर में मुदित मुग्धा उषा-रानी नहाती है !

शशि-बंध में बँध, रात भर आसव पिया
प्रतिदान जिसका प्रीति पावन से दिया
नव अंगरागों से जगत सुरभित किया
सोच हेला-हाव, अरुणिम तार रेशम के बहाती है !

नव रंग सरसिज के भरे जिसका वदन
परितोष भावों को किये जैसे वहन
प्रिय कल्पना में मंजु मंगल मन मगन
रे अकारण हर दिशा सीकर उड़ाकर गहगहाती है !

1959

(43) सुहानी सुबह

जीवन की हर सुबह सुहानी हो !

भर लो हास बहारों का
नदियों कूल कछारों का
फूलों गजरों हारों का
कन-कन की हर्षान्त कहानी हो !

मीठा राग विहंगों का
पागल प्रेम उमंगों का
अंतर लाज-तरंगों का
छलिया दुनिया नहीं बिरानी हो !

शीतल नेह निगाहों से
भर दो दुनिया चाहों से
प्यार भरे गलबाहों से
लहकी-लहकी मधुर जवानी हो !
1958

(44) लघु जीवन

फूलों का संसार हमारा है !

उज्ज्वल हास लुटाते हैं
मधु मकरंद उड़ाते हैं
मारुत पेंग सुहाते हैं
झंकृत उर हर तार हमारा है !

ले लो हार बनाने को
भर लो माँग सजाने को
सूना गेह बसाने को
भोला-भोला प्यार हमारा है !

हमको देख लजाओ ना
छलना भाव जताओ ना
इतना हाय सताओ ना
दो पल का शृंगार हमारा है !
फूलों का संसार हमारा है !
1958

(45) फाग

फागुन का महीना है, मचा है फाग
होली छाक छायी है ; सरस रँग-राग !

बालों में गुछे दाने, सुनहरे खेत
चारों ओर झर-झर झूमते समवेत !

पुरवा प्यार बरसा कर, रही है डोल,
सरसों रूप सरसा कर, खड़ी मुख खोल !

रे, हर गाँव बजते डफ-मँजीरे-ढोल
देते साथ मादक नव सुरीले बोल !

चाँदी की पहन पायल सखी री नाच,
आया मन पिया चंचल सखी री नाच !
1956

(46) वर्षा
(तीन सुभाषित)

(1)
अंक भर-भर नव सलेटी बादलों को
स्नेह-पूरित आ गयी बरसात रे !
हर मलिन उर को सहज ही दे गयी मधु
भावनाओं की नयी सौगात रे !

(२)

एक-रसता स्वर अनारत भंग कर जब
राग बन रिमझिम बरसती है घटा,
दूर क्षितिजों तक बिखर जाती अनावृत
हो तभी नव-सृष्टि की गोपन छटा !

(३)

मन-सरोवर में नयी हलचल लिए, नव
हाव से रह-रह थिरकतीं उर्मियाँ,
कौन ने, अव्यक्त मधुरस-धार में यों
प्राण मेरा आज रे नहला दिया !

1958

(47) दीप जलाओ

आँगन-आँगन दीप जलाओ,
दीपों का त्योहार मनाओ !

स्वर्णिम आभा घर-घर बिखरे
मनहर आनन, कन-कन निखरे
ज्योतिर्मय सागर लहराये
काली-काली रात सजाओ !

निशि अलकों में भर-भर रोली
नाचें जगमग किरनें भोली
आलोक घटा घिर-घिर आये
सारी सुधबुध भूल नहाओ !

हर उर अभिनव नेह भरा हो
युग-युग रोयी धन्य धरा हो,
चलो सुहागिन, थाल उठाओ
नभ-गंगा में दीप बहाओ !

1960

(48) दीप-माला

आज घर-घर छा रहा उल्लास !

भर हृदय में प्रीत
मधु मदिर संगीत
आज घर-घर दीपकलिका वास !

नव सुनहरा गात
जगमगाती रात
आज घर-घर जा लुटाती हास !
कर रमन शृंगार
भर उमंग विहार
आज घर-घर दीप-माला रास !

1960

(49) अभिषेक

माना, अमावस की अँधेरी रात है,
पर, भीत होने की अरे क्या बात है ?
एक पल में लो अभी
जगमग नये आलोक के दीपक जलाता हूँ !

माना अशोभन, प्रिय धरा का वेष है
मन में पराजय की व्यथा ही शेष है,
पर, निमिष में लो अभी
अभिनव कला से फिर नयी दुलहिन सजाता हूँ !

कह दो अँधेरे से प्रभा का राज है,
हर दीप के सिर पर सुशोभित ताज है,
कुछ क्षणों में लो अभी
अभिषेक आयोजन दिशाओं में रचाता हूँ !

1961

(50) दीप धरो

सखि ! दीप धरो !

काली-काली अब रात न हो,
घनघोर तिमिर बरसात न हो,
बुझते दीपों में हौले-हौले,
सखि ! स्नेह भरो !

दमके प्रिय-आनन हास लिए,
आगत नवयुग की आस लिए,
अरुणिम अधरों से हौले-हौले,
सखि ! बात करो !

बीते बिरहा के सजल बरस
गूँजे मंगल नव गीत सरस
घर आये प्रियतम, हौले-हौले
सखि ! हीय हरो !

1961

(51) रूपासक्ति

सोने न देती सुछवि झलमलाती किसी की !

जादू भरी रात, पिछला पहर
ओढ़े हुआ जग अँधेरा गहर
भर प्रीत की लोल शीतल लहर
सूरत सुहानी सरल मुसकराती किसी को !

गहरी बड़ी जो मिली पीर है
निर्धन हृदय के लिए हीर है
अंजन सुखद नेह का नीर है
अल्हड़ अजानी उमर जगमगाती किसी की !

रीझा हुआ मोर-सा मन मगन
बाहें विकल, काश भर लूँ गगन
कैसी लगी यह विरह की अगन
मधु गन्ध-सी याद रह-रह सताती किसी की !

1958

(52) मोह-माया

सोनचंपा-सी तुम्हारी याद साँसों में समायी है !

हो किधर तुम मल्लिका-सी रम्य तन्वंगी,
रे कहाँ अब झलमलाता रूप सतरंगी,
मधुमती-मद-सी तुम्हारी मोहनी रमनीय छायी है !

मानवी प्रति-कल्पना की कल्प-लतिका बन
कर गयीं जीवन जवा-कुसुमों भरा उपवन,
खो सभी, बस, मौन मन-मंदाकिनी हमने बहायी है !

हो किधर तुम, सत्य मेरी मोह-माया री
प्राण की आसावरी, सुख धूप-छाया री
राह जीवन की तुम्हारी चित्रसारी से सजायी है !

1960

(53) रात बीती

याद रह-रह आ रही है,
रात बीती जा रही है !

ज़िन्दगी के आज इस सुनसान में
जागता हूँ मैं तुम्हारे ध्यान में
सृष्टि सारी सो गयी है,
भूमि लोरी गा रही है !

झूमते हैं चित्र नयनों में कई

गत तुम्हारी बात हर लगती नयी
आज तो गुज़रे दिनों की
बेरुख़ी भी भा रही है !

बह रहे हैं हम समय की धार में
प्राण ! रखना पर भरोसा प्यार में
कल खिलेगी उर-लता जो
किस क़दर मुरझा रही है !

1957

(54) व्यथा-बोझिल रात

किसी तरह दिन तो काट लिया करता हूँ
पर, मौन व्यथा-बोझिल रात नहीं कटती,
मन को सौ-सौ बातों से बहलाता हूँ
पर, पल भूल तुम्हारी मूर्ति नहीं हटती !

1959

(55) अगहन की रात

तुम नहीं ; और अगहन की ठण्डी रात !

संध्या से ही सूना-सूना, मन बेहद भारी है,
मुरझाया-सा जीवन-शतदल, कैसी लाचारी है !
है जाने कितनी दूर सुनहरा प्रात !

खोकर सपनों का धन, आँखें बेबस बोझिल निर्धन
देख रही हैं भावी का पथ, भर-भर आँसू के कन,
डोल रहा अन्तर पीपल का-सा पात !

है दूर रोहिणी का आँचल, रोता मूक कलाधर
खोज रहा हर कोना, बिखरा जुन्हाई का सागर
किसको रे आज बताएँ मन की बात !

1958

(56) दूर तुम

दूर तुम प्रिय, मन बहुत बेचैन !

अजनबी कुछ आज का वातावरण,
कर गया जैसे कि कोई धन हरण,
और हम निर्धन बने
वेदना कारण बने
मूक बन पछता रहे, जीवन अँधेरी रैन !

खो कहीं नीलांजना का हार रे,
अनमना सावन बरसता द्वार रे,
और हम एकान्त में
रात के सीमांत में
जागते खोये हुए-से, पल न लगते नैन !

1956

(57) प्रिया से

इस तरह यदि दूर रहना था,
तो बसे क्यों प्राण में ?

है अपरिचित राह जीवन की
साथ में संबल नहीं ;
व्योम में, मन में घिरी झंझा
एक पल को कल नहीं,
यदि अकेले भार सहना था ;
तो बसे क्यों ध्यान में ?

जल रही जीवन-अभावों की
आग चारों ओर रे,
घिर रहा अवसाद अन्तर में
है थका मन-मोर रे,

इस तरह यदि मूक दहना था
तो बसे क्यों गान में ?
1957

(58) बिरहिन

कब सरल मुसकान पाटल-सी बिखेरोगे सजन !

अनमना सूना बहुत बोझिल हृदय
धड़कनों के पास आओ, हे सदय !
कर रही बिरहिन प्रतीक्षा, उर भरे जीवन-जलन !

धूप में मुरझा रही यौवन-लता
मधु-बसंती प्यार इसको दो बता
मोरनी-सी नाच लूँ जी भर, रजत पायल पहन !

साथ ले चितचोर सोयी है निशा
भाविनी-सी राग-रंजित हर दिशा
रे अजाना दर्द प्राणों का, करूँ कैसे सहन !
1959

(59) प्रतीक्षा

कितने दिन बीत गये
सपन न आये !

जागे सारी-सारी रात
डोला अंतर पीपर-पात
मन में घुमड़ी मन की बात
सजन न आये !

मेघ मचाते नभ में शोर
जंगल-जंगल नाचे मोर
हमको भूले री चितचोर

सदन न आये !

भर-भर आँचल कलियाँ फूल
दीप बहाये सरिता कूल
रह-रह तरसे पाने धूल
चरन न आये !
1960

(60) साध

कितने मीठे सपने तुमने दे डाले
पर, धरती पर प्यार सँजोया एक नहीं !

युग-युग से जग में खोज रहा एकाकी
पर, नहीं मिला रे मनचाहा मीत कहीं,
कोलाहल में मूक उमरिया बीत गयी
सुन पाया पल भर भी मधु-संगीत नहीं,
भर-भर डाले क्षीर-सिंधु मुसकानों के
संवेदन से हृदय भिगोया एक नहीं !

एक तरफ़ तो बिखरा दीं सुषमा-पूरित
सौ-सौ मधुमासों की रंगीन बहारें,
और सहज दे डाले दोनों हाथों से
गहने रवि-शशि, तो गजरे फूल-सितारे,
पर, मेरे उर्वर जीवन-पथ पर तुमने
बीज मधुरिमा का बोया एक नहीं !
1956

(61) स्नेह भर दो

आज मेरे मौन बुझते दीप में प्रिय, स्नेह भर दो !

जगमगाए वर्तिका आलोक फैले
लोक मेरा नव सुनहरा रूप ले ले

आर्द्र आनन पर अमर मुसकान खेले
मूक हत अभिशप्त जीवन, राग रंजित प्रेय वर दो !

बन्द युग-युग से हृदय का द्वार मेरा
राह भूला, तम भटकता प्यार मेरा
भग्न जीवन-बीन का हर तार मेरा
जग-जलधि में डूबते को बाँह दो, विश्वास-स्वर दो !

1958

(62) रतजगा

रह-रह कहीं दूर, मधु बज रही बीन !

आयी नशीली निशा
मदमस्त है हर दिशा
घिर-घिर रही याद, सुधबुध पिया-लीन !

मधु-स्वप्न खोया हुआ
जग शांत सोया हुआ
प्रिय-रूप-जल-हीन, अँखियाँ बनी मीन !

आशा-निराशा भरे
जीवन-पिपासा भरे
दिल आज बेचैन, खामोश, ग़मगीन !

रोती हुई हर घड़ी
कैसी मुसीबत पड़ी
जैसे कि सर्वस्व मेरा लिया छीन !

1959

(63) वंचना

जिसको समझा था वरदान
वही अभिशाप बन गया !

चमका ही था अभिनव चाँद
गगन में मेघ छा गये,
महका ही था मेरा बाग
कि सिर पर वज्र आ गये,
जिसको समझा था शुभ पुण्य
वही कटु पाप बन गया !

जिसको पा जीवन में स्वप्न
सँजोये ; व्यंग्य अब बने,
जगमग करता जिन पर स्वर्ण
वही अब क्षार से सने,
जिसको समझा था सुख-सार
वही संताप बन गया !

1959

(64) अब नहीं...

अब नहीं मेरे गगन पर
चाँद निकलेगा !

बीत जाएगी तुम्हारी याद में सारी उमर
पार करनी है अँधेरी और एकाकी डगर ;
किस तरह अवसन्न जीवन
बोझ सँभलेगा !

शांत, बेबस, मूक, निष्फल खो उमंगों को हृदय
चिर उदासी मग्न, निर्धन, खो तरंगों को हृदय

अब नहीं जीवन-जलधि में
ज्वार मचलेगा !

नेह रंजित, हर्ष पूरित, इंद्रधनुषी फाग को
उपवनों में गूँजते रस-सिक्त पंचम-राग को
क्या पता था, इस तरह
प्रारब्ध निगलेगा !

1959

(65) गाओ

गाओ कि जीवन गीत बन जाए !

हर क़दम पर आदमी मजबूर है,
हर रुपहला प्यार-सपना चूर है,
आँसुओं के सिन्धु में डूबा हुआ
आस-सूरज दूर, बेहद दूर है,
गाओ कि कण-कण मीत बन जाए !

हर तरफ़ छाया अँधेरा है घना,
हर हृदय हत, वेदना से है सना,
संकटों का मूक साया उम्र भर
क्या रहेगा शीश पर यों ही बना ?
गाओ, पराजयजीत बन जाए !

साँस पर छायी विवशता की घुटन
जल रही है ज़िन्दगी भर कर जलन
विष भरे घन-रज कणों से है भरा
आदमी की चाहनाओं का गगन,
गाओ कि दुख संगीत बन जाए !

1959

(66) भोर होती है!

और अब आँसू बहाओ मत
भोर होती है !

दीप सारे बुझ गये
आया प्रभंजन,
सब सहारे ढह गये
बरसा प्रलय-घन,
हार, पंथी ! लड़खड़ाओ मत
भोर होती है !

बह रही बेबस उमड़
धारा विपथगा,
घोर अँधियारी घिरी
स्वच्छंद प्रमदा,
आस सूरज की मिटाओ मत
भोर होती है !

1959

(67) मच्छरों का संगीत

('प्रयोगवाद' पर व्यंग्य)

हर रोज़ रात होते ही
अनगिनती मूक मच्छरों का
समवेत-गान
कमरे में गूँज-गूँज उठता है !
जिसमें नहीं तनिक भी
भाव कल्पना का वैभव
केवल बजता -
रव, रव, रव !

निद्रा उचटा देने वाली
यह कैसी लोरी ?
यह कैसा सरगम ?

अच्छा हो
यदि इस पर बरसे
डी. डी. टी.
झय्यम-झमझम-झय्यम !
1956

(68) भूमिका

सुनहरी फ़सल के लिए
रसभरी ग़ज़ल के लिए
हृदय-भूमि को सींचना !

प्रिय अमिय-धरों के लिए
मधुरतम स्वरों के लिए
हृदय-तार को खींचना !
1956

(69) अंकुर

फोड़ धरती की कड़ी चट्टान को
ऊर्ध्वगामी शक्ति का व्यक्तित्व
अंकुर फूटता है !

आँधियों के दृढ़ प्रहारों से
सतत संघर्ष रत
नव चेतना का
दिव्य अंकुर फूटता है !

सिर उठा
फैला भुजाएँ

जब गगन में झूमता है वह
अमंगल नाश का विश्वास सारा
टूटता है !
सृष्टि की जीवन-विरोधी भावनाओं का
उमड़ता वेग
धीरज
छूटता है !

अंकुरों की राह से
हट कर चलो !
अंकुरों की बाँह से
हटकर चलो !
अंकुरों को फैलने दो
धूप में
विस्तृत खुले आकाश में !
1958

थमना कैसा ?

जीवन में थमना कैसा ?

गति ही चेतन जीवन है,
गति-मुक्त
मनुज का अस्तित्व नहीं,
गति ही जीवन,
ईप्सित बंधन है !

हर्ष-विषाद व निश्चय-भ्रम,
बिखरा-बिखरा दैनिक-क्रम,
जीवन की
स्वस्थ प्रखर गति का सूचक है !
जीवन में स्थिरता कैसी,
जमना कैसा ?

जीवन बहता सोता है जल का,
इसमें तनिक विचार न होता
    बीते कल का !
धारा है यह,
घहर-घहरकर उमड़ेगा ;
सावन-भादों के मेघों-सा
काल-पृष्ठ पर
रह-रह घुमड़ेगा !

बहते जाओ, बहते जाओ,
गिर-गिरकर
उठ-उठकर

पथ की निर्मम चोटों को
    सहते जाओ,
गति-प्रेरक गीता कहते जाओ !
भूल कहीं भी जीवन में
    रुककर रमना कैसा ?
1958

(71) रात भर

रात भर सन्-सन् पवन
फूस की छत और माटी की दिवारों से
शराबी की तरह
करता रहा मदहोश आलिंगन !
    रात भर सन्-सन् पवन !
डोलती दहशत रही भीतर कुटी के,
चार आँखें
रतजगा करती रहीं भीतर कुटी के,
तम बरसता ही रहा
पर,
घिर न पाया एक पल

आशा भरा भावी उषा-जीवन !
    रात भर
    गरजा किया सन् सन् पवन !
1957

(72) अंधकार

शीत युद्ध से समस्त विश्व त्रस्त
हो रहा मनुष्य भय विमोह ग्रस्त !

डगमगा रही निरीह नीति-नाव
जल अथाह, नष्ट पाल-बंधु-भाव !

राष्ट्र द्वेष की भरे अशेष दाह
मित्रता प्रसार की निबद्ध राह !

मच रही अजीब अंध शस्त्र-होड़
पशु बना मनुज विचार-शक्ति छोड़ !

जन-विनाश चक्र चल रहा दुरंत
आज साधु-सभ्यता विहान अंत !

गूँजते चतुर्दिशा कठोर बोल
रम्य-शांति-राग का रहा न मोल !

एकता-सितार तार छिन्न-भिन्न !
हर दिशा उदास मूक खिन्न-खिन्न !

अस्त सूर्य, प्राण वेदना अपार
अंधकार, अंधकार, अधंकार !

1959

(73) लक्ष्य

यदि सूखे युग-अधरों को मुसकान नहीं दे पाये,
अश्रु-विमोचित आँखों में यदि सपने नहीं सजाये,
असमय उजड़ी बगिया को यदि फिर से लहलहा न दी,
सूनी-सूनी डालों को यदि फिर से चहचहा न दी,
तो व्यर्थ तुम्हारा जीवन !

शोषण-अग्नि-दग्ध तन के यदि नहीं मिटाये छाले,
यदि हारे थके उरों में स्पंदित प्राण नहीं डाले,
यदि नहीं घुटन के क्षण में बरसा घर-घर में सौरभ,
और नहीं महका सारा अणु-उद्‌जन-धूम ग्रसित नभ,
तो व्यर्थ तुम्हारा गायन !

बढ़ता वेग नहीं रोका, यदि प्रतिद्वन्द्वी लहरों का,
हिंसक क्रुद्ध आक्रमक फन यदि कुचला न विषधरों का,
जनयुग-संस्कृति सीता की यदि लज्जा न बचा पाये,
पूँजीशाही रावण को यदि फिर से न मिटा पाये,
तो व्यर्थ तुम्हारा यौवन !

1956

(74) आलोक

मनुष्य का भविष्य
अंधकार से,
शीत-युद्ध-भय प्रसार से
मुक्त हो,मुक्त हो !
रश्मियाँ विमल विवेक की
विकीर्ण हों,
शक्तियाँ विकास की विरोधिनी
विदीर्ण हों !
वर्ग-वर्ण भेद से,

आदमी-ही !आदमी की क़ैद से
मुक्त हो, मुक्त हो !

चक्रवात, धूल, वज्रपात से
नवीन मानसी क्षितिज
घिरे नहीं
घिरे नहीं !
नये समाज का शिखर
गिरे नहीं, गिरे नहीं !

पुनीत दिव्य साधना,
विश्व-शांति कामना,
उषा समान भूमि को सिँगार दे,
त्रस्त जग उबार दे
प्यार से दुलार दे

नवीन भावना-पराग
आग में झुलस
जले नहीं
जले नहीं !
अनेक अस्त्र-शस्त्र बल प्रहार से,
विषाक्त दानवी घृणा प्रचार से,
वर्तमान सभ्यता
मुक्त हो, मुक्त हो !

1956

(75) शुभकामनाएँ

जो लड़ रहे
साम्राज्यवादी शक्तियों से देश,
जिनकी वीर जनता ने
किया धारण शहीदी वेश
भेजता हूँ मैं उन्हें शुभकामनाएँ

हो विजय !
भेजता विश्वास हूँ
हे अभय !
अन्तिम विजय तुमको मिलेगी,
आततायी-दुर्ग की दृढ़ नींव
निश्चय ही हिलेगी,
स्वार्थमय
साम्राज्य-लिप्सा से सनी
सत्ता ढहेगी !
मुक्त जनता
उठ
बुलन्दी से
निडर बन
मातृ-भू की जय कहेगी !

जानते हैं हम
जानते हो तुम
जगत की वस्तु सर्वोत्तम
व्यक्ति की स्वाधीनता है
व्यक्ति के हित में !
धरा पर
एक मानव भी
न वंचित हो
प्रथम अधिकार से
स्वाधीन जीवन से।
अतः
संघर्ष जो तुम कर रहे हो,
देश का बूढ़ी शिराओं में
युवा बल भर रहे हो
शक्ति उससे पा रहा मैं भी !
राष्ट्र की स्वाधीनता का गीत
मिल कर गा रहा मैं भी !

1957

(76) दीप जलता है

दीप जलता है !
सरल शुभ मानवी संवेदना का स्नेह भरकर
हर हृदय में दीप जलता है !
युग-चेतना का ज्वार
जीवन-सिंधु में उन्मद मचलता है !
दीप जलता है !

तिमिर-साम्राज्य के
आतंक से निर्भय
अटल अवहेलना-सा दीप जलता है !

जगमगाता लोक नव आलोक से,
मुक्त धरती को करेंगे
अब दमन भय शोक से !

लुप्त होगा सृष्टि बिखरा तम
हृदय की हीनता का ;
क्योंकि घर-घर
व्यक्ति की स्वाधीनता का
दीप जलता है !

बदलने को धरा
नव-चक्र चलता है !
नहीं अब भावना को
गत युगों का धर्म छलता है !

सकल जड़ रूढ़ियों की
शृंखलाएँ तोड़
नव, सार्थक सबल

विश्वास का
ध्रुव-दीप जलता है !
1958

(77) नया भारत

संघर्षों की ज्वाला में
हँस-हँस,
नव-निर्माणों के गीत
उमंगों के तारों पर
जन-जन गाता है,
भारत अपने सपनों को
सत्य बनाता है !

मज़बूत इरादों को लेकर
श्रम-रत हैं नर-नारी,
उगलेगा फ़ौलाद भिलाई
झूमेगी क्यारी-क्यारी !

बदला कण-कण भारत का,
बदला जीवन भारत का !

भागे मूक उदासी के साये
उल्लासों के सूरज चमके हैं,
युग-युग के त्रस्त सताये
मुरझाये मुखड़े दमके हैं !

दुर्भाग्य दफ़न अब होता है,
उन्मुक्त गगन अब होता है !
कलियाँ खिलने को तरसायीं जो,
गदराई अमराई में
भोली-भोली कोयल
मन के गीत न गा पायी जो,

अब तो
आँगन-आँगन कैसा मौसम आया !
कलियाँ नाचीं,
कोयल ने मन-भावन गायन गाया !

जीवन में अभिनव लहरें हैं,
चंदन से बुद्बुद् छहरे हैं !

क्रोधित चम्बल
खिल-खिल हँसती है,
बाँधों की बाहों में
अलबेली-सी
अपने को कसती है !
लो हिन्द महासागर से
बादल घिर आया,
धानी साड़ी पहन
धरा ने आँचल लहराया !
जीवन के बीज नये
अब बोता भारत है !
मानवता के हित में
रत होता भारत है !
1959

(78) एशिया

संगठित संघर्षरत सम्पूर्ण अभिनव एशिया
जागरित आलोकमय प्रत्येक मानव एशिया,
मुक्त अब साम्राज्यवादी चंगुलों से हो रहा
सभ्यता-साहित्य-संस्कृति-अर्थ-वैभव एशिया !

चीन-भारत मित्रता का जल रहा उर-उर दिया
स्नेह-पूरित ज्योति से जिसने उजागर युग किया,
वादियों दुर्गम पहाड़ों जंगलों औ' मरुथलों

में बसे हर ग्राम-जनपद को बना सुर-पुर दिया !
दृढ़ सुरक्षा-भावना ले पंच शर्तों की शिला
सर उठाये व्योम में अविचल खड़ी सबको मिला,
शांति से सहयोग से अविराम निज-गन्तव्य तक
सत्य, पहुँचेगा नये युग-साधकों का काफ़िला !

अब न होगा चूर सपना आदमी की प्रीत का,
और बढ़ता जायगा विश्वास उसकी जीत का,
आँसुओं का शाह भी अब छीन पाएगा नहीं
माँ-बहन के कंठ से स्वर-राग सावन-गीत का !
1956

(79) माओ और चाऊ के नाम

तुम्हारी मुक्ति पर
हमने मनाया था महोत्सव
क्या इसलिए ?
तुम्हारे मत्त विजयोल्लास पर
बेरोक उमड़ा था
यहाँ भी हर्ष का सागर
क्या इसलिए ?
नये इन्सान के प्रतिरूप में हमने
तुम्हारा
बंधु-सम स्वागत किया था
क्या इसलिए ?

कि तुम
अचानक क्रूर बर्बर आक्रमण कर
हेय आदिम हिंस्र पशुता का प्रदर्शन कर,
हमारी भूमि पर
निर्लज्ज इरादों से
गलित साम्राज्यवादी भावना से
इस तरह अधिकार कर लोगे ?

युग-युग पुरानी मित्रता को भूल
कटु विश्वासघाती बन
मनुजता का हृदय से अंत कर दोगे ?

तुम
आँसुओं के शाह बन कर
मृत्यु के उपहार लाओगे ?
पूरब से उदित होकर
अँधेरे का, धुएँ का
भर सघन विस्तार लाओगे ?
साम्यवादी वेष धर
सम्पूर्ण दक्षिण एशिया पर स्वत्व चाहोगे ?

इतिहास को
तुमसे कभी ऐसी अपेक्षा थी नहीं
ऐसा करुण साहाय्य
तुम दोगे उसे !
नव साम्यवादी लोक को
तुमसे कभी ऐसी अपेक्षा थी नहीं
ऐसा दुखद अध्याय
तुम दोगे उसे !

बदलो,
अभी भी है समय ;
अपनी नीतियाँ बदलो !

अभी भी है समय
पारस्परिक व्यवहार की
अपनी घिनौनी रीतियाँ बदलो !

अन्यथा;
संसार की जन-शक्ति

मिथ्या दर्प सारा तोड़ देगी !
आत्मघाती युद्ध के प्रेमी,
हठी !
बस लौट जाओ,
अन्यथा
मनु-सभ्यता
हिंसक तुम्हारा वार
तुम पर मोड़ देगी !
1962

(80) रंग बदलेगा गगन

अब नहीं छाया रहेगा
शीश पर काला कफ़न !
कुछ पलों में रंग बदलेगा गगन !

दे रहा संकेत मलयानिल
थिरक !
हर डाल पर
हर पात पर
नव-जागरण आभास
मोड़ लेता विश्व का इतिहास।
गत
भयावह तम भरा पथ
पीर बोझिल शोक युग,
शुभ आगमन आलोक युग !

स्वप्निल धरा गतिमान,
निसृत लोक में नव गान
गुंजित हर दिशा
बीती निशा, बीती निशा !

चिर-प्रतीक्षित

स्वर्ण सज्जित प्रात
आया द्वार
लेकर हर हृदय को
हर्ष का, उत्साह का उपहार !

मानव लोक से अब दूर होगा
वेदना का तम गहन,
भारी उदासी से दबा वातावरण !
नव रंग बदलेगा गगन !
1960

11

संवर्त

रचना-काल सन् 1962-1966
प्रकाशन सन् 1972

कविताएँ

1 संवर्त
2 अपेक्षित
3 समवेत
4 सुलक्षण
5 पुनरपि
6 पातालपानी की उपत्यका से
7 हेमन्ती धूप
8 हिमागम
9 तिघिरा की एक शाम (1)
10 तिघिरा की एक शाम (2)
11 अनभिव्यक्त
12 प्रश्न
13 विक्षोभ
14 अप्रत्याशित
15 नव वर्ष
16 मेरे ही लिए
17 सुकर : दुष्कर
18 दिनान्त
19 अनुदर्शन
20 जी लिया बसन्त
21 अनुशय
22 नियति
23 भिक्षा
24 विश्वास
25 जिजीविषु
26 जीवन प्राप्त जो
27 मोह-भंग
28 दृष्टिकोण
29 वेदना : एक दृष्टिकोण
30 संत्रस्त
31 वस्तु-स्थिति
32 उपलब्धि
33 स्वाँग
34 विपर्यस्त
35 ईर्ष्या
36 आत्म-बोध
37 वर्तमान
38 ऊहापोह
39 परिवेश के प्रति

40 वात्याचक्र
41 जीवन-संदर्भ
42 श्रमजित
43 संकल्प
44 आश्वस्त
45 विचित्र
46 वैषम्य
47 परिणति
48 प्रतिबद्ध
49 योगदान
50 नवोन्मेष

●

(1) संवर्त

पथ का मोड़
भाता है मुझे !

बहुत लम्बी डगर से
ऊब जाता हूँ,
अकारण ही
थकावट की शिथिलता में
न समझे डूब जाता हूँ !

सनातन
एक-से पथ पर
नयापन जब नज़र आता नहीं
मुझसे चला जाता नहीं !

तभी तो
हर नवागत मोड़ का
स्नेहिल
हृदयहारी
भाव-भीना
मुग्ध स्वागत !

इसमें हर्ज़ क्या है
पथ का मोड़
यदि इतना सुहाता है मुझे ?
पथ का मोड़ भाता है मुझे !

⬣

(2) अपेक्षित

सरस अधरों पर
प्रफुल्लित कंज-सी
मुसकान हो !
या उमंगों से भरा
मधु-गान हो !

मुसकान की
मधु-गान की
अभिशप्त इस युग में कमी है !
अत्यधिक अनवधि कमी है !
मात्र
नीरव नील होठों पर
बड़ी गहरी परत
हिम की जमी है !

प्रत्येक उर में
वेदना की खड़खड़ाती है फ़सल,

आह्लाद-बीजों का नहीं अस्तित्व,
केवल झनझनाते अंग,
मानव
चित्र-रेखा-वत्
खोजता सतरंग !

⬣

(3) समवेत

संगीत-सहायिनी
सुकण्ठी
आ
जीवन की तृष्णा को

गा !

सप्त-सुरों से
स्पन्दित हो
अग-जग,
संगीतक बन जाये
सूना मग !

ला
सुरबहार-वीणा-मृदंग
विविध वाद्य ला
बजा,
सुकण्ठी गा !
जीवन की तृष्णा को
गा !

(4) सुलक्षण

सुबह से आज
किस अव्यक्त से
उर उल्लसित !

सहसा
सुभाषित राग,
दायीं आँख
रह-रह कर
विवश स्पन्दित !

दूर कलगी पर
बिखरती
अजनबी गहरी सुनहरी आब,
पहली बार

गमले में खिला है
एक लाल गुलाब !
न जाने किस
अजाने
आत्म-शुभ सम्भाव्य की
यह भूमिका !
रोमांच पुष्पों से
लदी तन-यूथिका !
शायद,
आज तुमसे भेंट हो !

(5) पुनरपि

मानस में
अप्रत्याशित अतिथि से तुम
अचानक आ गये !
मन
नहीं था पूर्व-प्रस्तुत
आर्द्र अगवानी सजाये,
हार कलियों का लिए,
हर द्वार बन्दनवार बाँधे,
प्रति पलक
उत्सुक प्रतीक्षा में !

तुम्हीं प्रिय पात्र,
अभ्यागत !
बताओ
नहीं हूँ क्या
सदा से स्वागतिक मैं तुम्हारा ?

हर्ष-पुलकित हूँ,
अकृत्रिम भूमि पर मेरी

सहज बन
अवतरित हो तुम !
सुपर्वा
धन्य हूँ,
कृत-कृत्य हूँ !

पर, यह सकुच कैसी ?
रुको कुछ देर
अनुभूत होने दो
अमित अनमोल क्षण ये !

जानता हूँ
तुम प्रवासी हो,
अतिथि हो
चाहकर भी
मानवी आसक्ति के
सुकुमार बन्धन में
बँधोगे कब ?

अरे फिर भी....
तनिक... अनुरोध
फिर भी ....!

●

(6) पातालपानी की उपत्यका से

तुम्हारे अंक में
विश्रांति पाने आ गया
भटका प्रवासी
मैं !

अनावृत वक्ष-ढालों पर
सहज उतरूँ

सबल चट्टान रूपी बाँह दो,
शीतल अतल-की छाँह दो !
तप्त अधरों को
सरस जलधार का सुख-स्पर्श दो,
युग मूक मन को हर्ष दो,
अतृप्त आत्मा को
सुखद अनुराग-संगम बोध दो !
एकांत में
कल-कल मधुर संगीत से
दो स्वप्न का अधिवास बहुरंगी !
ओ गहन घाटी !
आ गया हूँ मैं
तुम्हारा प्राण
चिर-संगी !

कुछ क्षणों को बाँध लूँ
अल्हड़ तुम्हारी धार से
बेबस उमड़ती भावना का ज्वार !
फिर इस जन्म में
इस ओर
आना हो, न हो !

क्या मुझ प्रवासी का
नहीं इतना तनिक अधिकार
छोड़ जाऊँ जो
प्यार सूचक
चिह्न ही
दो .. चार .... ?

●

(7) हेमन्ती धूप

कितनी सुखद है
धूप हेमन्ती !

सुबह से शाम तक
इसमें नहाकर भी
हमारा जी नहीं भरता,
विलग हो
दूर जाने को
तनिक भी मन नहीं करता,
अरे, कितनी मधुर है
धूप हेमन्ती !

प्रिया-सम
गोद में इसकी
चलो, सो जायँ,
दिन भर के लिए खो जायँ !

कितनी काम्य
कितनी मोहिनी है
धूप हेमन्ती !
कितनी सुखद है
धूप हेमन्ती !

●

(8) हिमागम

सच, अब नहीं !
सौगन्ध ले लो
अब नहीं !
    अवहेलना-अवमानना
    हरगिज़ नहीं !

ज्योतिर्मयी
सुखदा
सुनहरी धूप
आओ !

थपथपाओ मत,
खुले हैं
द्वार, वातायन, झरोखे सब,
उपेक्षा अब नहीं
सौगन्ध ले लो।
अब नहीं !

प्रतीक्षातुर तुम्हारा
भेंट लो;
प्रति अंग को
उत्तेजना दो,
उष्णता दो !
ओ शुभावह धूप
अंक समेट लो,
हेमाभ कर दो !

ओढ़ लूँ तुमको
बहे जब तक हिमानिल,
मन कहे तब-तक
दिवा-स्वप्निल तुम्हारे लोक में
खोया रहूँ,
जी भर दहूँ, जी भर दहूँ !
तन रश्मियाँ भर दो !

सुनहरी धूप
आओ !
अब नहीं

अवहेलना-अवमानना,
हरगिज़ नहीं !
सौगन्ध ले लो !

●

(9) तिघिरा की एक शाम (चित्र : एक)

तिघिरा के शान्त जल में
तुम्हारा गोरा मुखड़ा
रहस्य भरे
निर्निमेष मुझे देखता
तैर रहा है !
सुडौल मांसल गोरी बाँह उठा
अरुणिम करतल पर हिलती
चक्रोंवाली अंगुलियाँ
दूर तिघिरा के वक्षस्थल से
मुझे बुलातीं !

मैं -
जो तट पर।
देख रहा छबि
बाइनॉक्युलर लगाये
वासना बोझिल आँखों पर !

●

(10) तिघिरा की एक शाम (चित्र : दो)

तिघिरा के सँकरे पुल पर
नमित नयन
सहमी-सहमी
तुम !

तेज़ हवा में लहराते केश,
सुगठित अंगों को

अंकित करता
फर-फर उड़ता
कांजीवरम् की साड़ी का फैलाव,
दो फुर्तीले हाथों का
कितना असफल दुराव !

हौले-हौले
चलते
नंगे गदराए गोरे पैर,
सपने जैसी
अद्भुत रँगरेली रोमांचक सैर !

●

(11) अनभिव्यक्त

व्यक्ति -
अपनी अकल्पित हर व्यथा की
सर्व-परिचित परिधि !

किंचित् अनाकृत अतिक्रमण
अपने-पराये के लिए रे
अतिकथा,
अरुचिकर अतिकथा !
अनुभूत जीवन-वेदना
बस
बाँध रक्खो
पूर्व निर्धारित परिधि में,
व्यक्ति के परिवेश में,
अवचेतना के देश में।

●

(12) प्रश्न

किसने
अनास्था के हज़ारों बीज
मानस-भूमि पर
छितरा दिये ?

किसने
हमारी अचल निष्ठा के
विरल अनमोल माणिक
संशयावह राह पर
बिखरा दिये ?

रीती अश्रद्धा के
नुकीले शूल
चरणों में चुभा
विश्वास की
अक्षय धरोहर छीन ली ?
किसने
अचानक
खोखले दर्शन-कथन से,
सत्य
अनुभव-सिद्ध
जीवन-मान्यताओं की
अकुण्ठित ज्ञान-गुरुता हीन की ?
किसने
विनाशक आँधियों के वेग से
विचलित किये
उन्नत गगन-चम्बी
हमारी लौह-आस्था के शिखर ?

(13) विक्षोभ

इच्छाएँ हमारी
त्रस्त हैं,
उद्विग्न हैं,
आकार पाने के लिए !

आसंग इच्छाएँ
जिन्हें हमने
बड़े ही यत्न से
गोपन-सुरक्षित स्थान पर रक्खा सदा
वांछित अनागत की प्रतीक्षा में !

विविक्षित भावनाएँ
आकुलित हैं,
आक्रमित हैं,
वास्तविक अनुभूति का
आधार पाने के लिए !

पर, वायुमण्डल में
न जाने किस तरह की
अश्रुवाही वाष्प है परिव्याप्त ;
जिससे हम विवश हैं
मूक रोने के लिए,
आक्रोश तृष्णा भार
ढोने के लिए !

(14) अप्रत्याशित

सदा.... सदा की तरह
नव मेघों के उपहारों की
लेकर बाढ़
आया आषाढ़ ;

पर, तीव्र पिपासाकुल चातक ने
कुछ न कहा,
सूनी-सूनी आँखों से
बस देखता रहा,
आगत का स्वागत नहीं किया,
जीवन-रस नहीं पिया !

सदा....सदा की तरह
झर-झर सावन बरसा,
रतिकर कंपित वक्षस्थल ले
उमड़ी / तड़पीं
श्याम घटाएँ
हरित सजल आँचल फैलाये,
पर, नृत्य मयूरों ने नहीं किया,
भादों बीत गया नीरस
मौन गगन ने
कजली गीतों का स्वर नहीं दिया।

सदा... सदा की तरह
आयीं शारद-ज्योत्स्ना रातें
शीतल।
याद दिलाने
मांसल विधु-वदनी की बातें !
पर, शुक्लाभिसारिका
निज गृह से नहीं हिली,
पथ
सुनसान बनाये
प्रति निशि जागा,
शान्त सरोवर में
नहीं मोरपंखी कहीं चली !

सदा...सदा की तरह
लह-लह मधु-माधव आया,

नव पल्लव
रंग-बिरंगे पुष्पों के गजरे लाया
पर, वासन्ती नहीं खिली,
मधुकण्ठी की पीड़ा भी नहीं सुनी !

बोझिल तिथियों का,
धूमिल स्मृतियों का,
एक बरस
बी...त...ग...या...!

⬣

(15) नव वर्ष

हे नव वर्ष !
तुम्हारा स्वागत-सत्कार
चाहते हुए भी
न कर सका !

तुम्हारे शुभागमन के पूर्व
कई दिनों से
विविध आयोजनों की
रूपरेखा बनाने का विचार
मन में आता रहा,
न जाने
क्या-क्या अभिनव-अनूठा समाता रहा ;
पर, कार्यरूप में
तनिक भी
परिणत न कर सका उसे !

हे नव वर्ष !
तुम आ गये
बिना किसी धूमधाम के ?
और मैं

तुम्हें प्यार भरी भुजाओं में
चाहते हुए भी
न भर सका !

हे नव वर्ष !
तुम सचमुच
कितने उदास हो रहे होगे !
तुम्हारे अभिनन्दन में
इस बार
एक क्या अनेक कविताएँ
लिखना चाहते हुए भी
एक पंक्ति भी तुम्हें
समर्पित न कर सका !

अरे, यह क्या हुआ ?
कुछ भी तो स्मरणीय विशिष्ट
घटित हो जाता
जीवन-नाटक का
मंगलाचरण
या
पटाक्षेप !
पर, कुछ भी तो नहीं हुआ ;
मात्र पूर्वाभ्यास का बोध होता रहा !

हे नव वर्ष !
तुम्हें जीवन-क्रमणिका में
महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने की साध लिए
जागता... सोता रहा !
चाहते हुए भी
न जी सका,
न मर सका !

●

(16) मेरे ही लिए

शिशिर की
मूक ठण्डी रात
    मेरे ही लिए !

सितारे सब अपरिचित
वृक्ष सोये
सामने बस एक
तम का गात
    मेरे ही लिए !

न जाने
किन अक्षम्य अभूत पापों का
कुफल ;
मधुलोक खोया
हर मनुज,
पर, मात्र मैं
परिश्रान्त विह्वल !

यह अकेली स्तब्ध
बोझिल
हिम ठिठुरती रात
    मेरे ही लिए !

●

(17) सुकर : दुष्कर

महज़
दिन बिताना सरल है,
जीना कठिन !

ज़िन्दगी को काटना

कितना सहज है !

खण्डित व्यक्तित्व के
धागों / रेशों को
सहेजना
सँवारना
सीना कठिन !

केवल
समय-असमय
उगलने को गरल है
पीना कठिन !
महज़
दिन बिताना सरल है
जीना कठिन !

⬣

(18) दिनान्त

आज का भी दिन
हमेशा की तरह
चुपचाप बीत गया !
अनिच्छित असह
ब्राह्ममुहूर्त का कर्कश
अलार्म बजा,
दिनागम की ख़ुशी में
एक पक्षी भी न चहका !

भोर
घर-घर बाँट आयी स्वर्ण !
मेरे बन्द द्वारों पर
किसी ने भी
न दस्तक दी

न धीरे से किसी ने भी
पुकारा नाम !

प्रौढ़ा दोपहर
प्रत्येक की दैनन्दिनी में
लिख गयी
विश्रान्ति के क्षण ;
मात्र मुझको
ऊब
केवल ऊब !

अलसाया शिथिल
अब देखता हूँ
आ रही सन्ध्या
अरुणिमा,
तुम भला क्या दे सकोगी ?
मौन उत्तर था
'अँधेरा....
घन अँधेरा !'

⬣

(19) अनुदर्शन

उड़ गये
ज़िन्दगी के बरस रे कई,
राग सूनी
अभावों भरी
ज़िन्दगी के बरस
हाँ, कई उड़ गये !

लौट कर
आयगा अब नहीं
वक़्त

जे
धूल में, धूप में
खो गया,
स्याह में सो गया !

शोर में
चीखती ही रही ज़िन्दगी,
हर क़दम पर विवश,
कोशिशों में अधिक विवश !

गा न पाया कभी
एक भी गीत मैं हर्ष का,
एक भी गीत मैं दर्द का !

गूँजता रव रहा
मात्र :
संघर्ष....संघर्ष... संघर्ष !
विश्रान्ति के
पथ सभी मुड़ गये !
ज़िन्दगी के बरस,
रे कई
देखते...देखते
उड़ गये !

(20) जी लिया बसन्त

हमने भी
जी लिया बसन्त !

सुना था
बसन्त में फूल खिलते हैं,
हर डाल कोंपलों

नव पल्लवों से लद जाती है,
नव-रस से भर जाती है !

बसन्त में
मदिर-मधुर भावनाओं के
फूल खिलते हैं,
सारी सृष्टि
रंग-बिरंगे परिधानों से सज जाती है,
अन्तर में विविध स्वर
अनायास बज उठते हैं,
सब तरफ़ अजानी झंकारों की गूँज
लहरती है
छा जाती है !
हर सुनसान
अभिनव स्पन्दन पा जाता है,
हर अंधकार
आशा के स्वर्णिम आलोक से
जगमगा जाता है !
हर श्लथ-निश्चेष्ट हृदय
अपरिचित उमंगों से
सिहरता
कसमसाता है !

हर अधर
अभोगे दर्द की अनुभूति पा
फड़फड़ाता है
गुनगुनाता है !
हाथ
कल्पना के उच्चतम शिखरों को
छू लेते हैं !

पर, हमने, यह सब,

कुछ भी तो न जाना,
कुछ भी तो न देखा !
जीवन की कश-म-कश में
बीत गया बसन्त !
हमने भी जी लिया बसन्त !

(21) अनुशय

हँसकर और रोकर
रे, बिता दी
ज़िन्दगी हमने,
जी न पाये !

जागकर दिन
रात सो कर
हाँ, बिता दी
ज़िन्दगी हमने,
जी न पाये !

होश में रह
या कि हो बेहोश
कैसे यह
बिता दी
ज़िन्दगी हमने ?
जी न पाये !

पाकर तनिक
पर, सब गँवाकर
हा, बिता दी
ज़िन्दगी हमने,
जी न पाये !

तरसकर / तड़पकर
बनते-बिगड़ते
मूक-मुखरित
एक यदि संगत
असंगत अन्य
कुछ सपने निरखते ही
बिता दी
ज़िन्दगी हमने,
जी न पाये !

(22) नियति

संदेहों का धूम भरा
साँसें
कैसे ली जायँ !

अधरों में
विष तीव्र घुला
मधुरस
कैसे पीया जाय !

पछतावे का ज्वार उठा
जब उर में
कोमल शय्या पर
कैसे सोया जाय !

बंजर धरती की
कँकरीली मिट्टी पर
नूतन जीवन
कैसे बोया जाय !

(23) भिक्षा

संपीडित अँधेरा
भर दिया किसने
अरे !
बहूमूल्य जीवन-पात्र में मेरे ?
एक मुट्ठी रोशनी
दे दो
मुझे !

संदेह के
फणधर अनेकों
आह !
किसने
गंध-धर्मी गात पर
लटका दिये ?

विश्वास-कण
आस्था-कनी
दे दो
मुझे !

एक मुट्ठी रोशनी
दे दो
मुझे !

●

(24) विश्वास

जीवन में
पराजित हूँ,
हताश नहीं !

निष्ठा कहाँ ?
विश्वासघात मिला सदा,
मधुफल नहीं,
दुर्भाग्य में
बस
दहकता विष ही बदा !

अभिशप्त हूँ,
पग-पग प्रवंचित हूँ,
निराश नहीं !

क्षणिक हैं
ग्लानि
पीड़ा
घुटन !
वरदान समझो
शेष कोई
मोह-पाश नहीं !

●

(25) जिजीविषु

गहरा अँधेरा
साँय....साँय पवन,
भयावह शाप-सा
छाया गगन,
अति शीत के क्षण !

पर, जियो इस आस पर
शायद कि कोई
एक दिन
बाले रवि-किरण-सा
राग-रंजित

हेम मंगल-दीप !

सुनसान पथ पर
मूक एकाकी हृदय तुम,
भारवत् तन
व्यर्थ जीवन !

पर, चलो इस आस पर
शायद किसी क्षण
चिर-प्रतीक्षित
अजनबी के
चरण निःसृत कर उठें संगीत !

खो गया मधुमास,
पतझर मात्र पतझर ;
फूल बदले शूल में
सपने गये सन धूल में !

ओ आत्महंता !
द्वार-वातायन करो मत बंद,
शायद
समदुखी कोई
भटकती ज़िन्दगी आ
कक्ष को रँग दे
सुना स्वर्गिक सुधाधर गीत !

(26) जीवन प्राप्त जो

जीने योग्य
जीवन के सुनहरे दिन
सुकृत वरदान-से,
आनन्दवाही गान-से,

मधुमय-सरस-स्वर-गूँजते दिन
आह ! जीने योग्य !
हर पल
हर्ष पीने योग्य !

जीवन के
सतत प्रतिकूलता के दिन,
उदासी-खिन्नता
अति रिक्तता से सिक्त
बोझिल दिन
अशुभ अभिशाप-से,
विष-दंश-वाही-ताप-से,
कटु विद्ध दुर्भर दिन
आह ! जीने योग्य !
हर पल
मर्ष पीने योग्य !

जीवन प्राप्त जो
अच्छा
बुरा
अविराम जीने के लिए !
अनिवार्य जीने के लिए !

(27) मोह-भंग

स्वीकार शायद
जो कभी भी था न
तुमको
भ्रांति उस अधिकार की
यदि आज
मानस में प्रकाशित हो गयी
सुन्दर हुआ

शुभकर हुआ !

अस्थिर
प्रवंचित मन !
न समझो
प्राप्य
जीवन की
बड़ी अनमोल अति दुर्लभ
धरोहर खो गयी !

मूर्च्छा नहीं,
निश्चय
सजगता।
मोह का कुहरा नहीं,
परिज्ञान
जीवन-वास्तविकता।

अर्थ जीवन को मिलेगा अब
नये आलोक में,
उद्विग्न मत होना तनिक भी
शोक में !

●

(28) दृष्टिकोण

अतीत का मोह मत करो,
अतीत
मृत है !
उसे भस्म होने दो,
उसका बोझ मत ढोओ
शव-शिविका मत बनो !
शवता के उपासक
वर्तमान में ही

एक दिन
स्वयं निश्चेष्ट हो रहेंगे
अनुपयोगी
अवांछित
अरुचिकर !

जो व्यतीत है
अस्तित्वहीन है !
वह वर्तमान का नियंत्रक क्यों हो ?
वह वर्तमान पर आवेष्टित क्यों हो ?
वर्तमान को
अतीत से मुक्त करो,
उसे सम्पूर्ण भावना से
जियो, भोगो !
वास्तविकता के
इस बोध से
कि हर अनागत
वर्तमान में ढलेगा !
अनागत
असीम है !

●

(29) वेदना : एक दृष्टिकोण

हृदय में दर्द है
तो मुसकराओ !

दर्द यदि
अभिव्यक्त
मुख पर एक हलकी-सी
शिकन के रूप में भी,

या सजगता की

तनिक पहचान से उभरे
दमन के रूप में भी,

निंद्य है !
धिक् है !
स्खलित पौरुष्य !

उर में वेदना है
तो सहज कुछ इस तरह गाओ
कि अनुमिति तक न हो उसकी
किसी को !

सिक्त मधुजा कण्ठ से
उल्लास गाओ !
पीत पतझर की
तनिक भी खड़खड़ाहट हो नहीं
मधुमास गाओ !
सिसकियों को
तलघरों में बन्द कर
नव नूपुरों की
गूँजती झनकार गाओ !
शून्य जीवन की
व्यथा-बोझिल उदासी भूलकर
अविराम हँसती गहगहाती
ज़िन्दगी गाओ !
महत् वरदान-सा जो प्राप्त
वह अनमोल
जीवन-गंधमादन से महकता
प्यार गाओ !

यदि हृदय में दर्द है
तो मुसकराओ !

दूधिया
सितप्रभ
रुपहली
ज्योत्स्ना भर मुसकराओ !

(30) संत्रस्त

दृष्टि-दोषों से सतत संत्रस्त
अर्थ-संगति हीन,
अद्भुत,
सैकड़ों पूर्वाग्रहों से ग्रस्त
हम, सन्देह के गहरे तिमिर से घिर
परस्पर देखते हैं
अजनबी से !

और...
अनचाहे
विषैले वायुमण्डल में
घुटन के बोझ से
निष्कल तड़पते जब

घहर उठता तभी
अति निम्नगामी
क्षुद्रता का सिन्धु,
अनगिनत
भयावह जन्तुओं से युक्त !
मनुजोचित सभी
शालीनता के बंधनों से मुक्त !

(31) वस्तु-स्थिति

सर्वत्र
कड़वाहट सुलभ
    दुर्लभ मधुरता !

सर्वत्र
घबराहट प्रकट
    जीवट विरलता !

सर्वत्र
झुलझलाहट-प्रदर्शन
    लुप्त स्थिरता !

सर्वत्र
आडम्बर-बनावट
    दूर कोसों वास्तविकता !

●

(32) उपलब्धि

अप्राप्य रहा
वांछित,
कोई खेद नहीं।

तथाकथित
आभिजात्य गरिमा के
अगणित आवरणों के भीतर
नग्न क्षुद्रता से परिचय,
निष्फलता की
उपलब्धि !
कोई खेद नहीं।

सहज प्रकट
तथाकथित
निष्पक्ष-तटस्थ महत् व्यक्तित्व का
अदर्शित अभिनय;
असफलता की
उपलब्धि !
कोई खेद नहीं।

●

(33) स्वाँग

मुझे
कृत्रिम मुसकराहट से चिढ़ है !

कुछ लोग
जब इस प्रकार मुसकराते हैं
मुझे लगता है
डसेंगे !
अपने नागफाँस में कसेंगे !

यही
अप्रिय मुसकराहट
शिष्टाचार का जब
अंग बन जाती है,

कितनी फीकी
नज़र आती है !
मुझे
इस कृत्रिम फीकी मुसकराहट से
चिढ़
बेहद चिढ़ है !

●

(34) विपर्यस्त

बुद्धि के उच्चतम शिखरों तक पहुँचे
हम
विज्ञान युग के प्राणी हैं
महान
      समुन्नत
      सर्वज्ञ !

हमारे लिए
जीवन के
सनातन सिद्धान्त
शाश्वत मूल्य
      अर्थ-हीन हैं !

हमारे शब्द-कोश में
'हृदय'
मात्र एक मांस-पिण्ड है
जो रक्त-शोधन का कार्य करता है
तन की समस्त शिराओं को
ताज़ा रक्त प्रदान करता है,
उसकी धड़कन का रहस्य
हमारे लिए नितान्त स्पष्ट है,
कमज़ोर पड़ जाने पर
अथवा
गल-सड़ जाने पर
हम उसको बदल भी सकते हैं।
हृदय से सम्बन्धित
पूर्व-मानव का
समस्त राग-बोध
उसके
समस्त कोमल-मधुर उद्‌गार

हमारे लिए
उपहासास्पद हैं !

हमारे लिए
पूर्व-मानव की
पारस्परिक प्रणय भावनाएँ
विरह-वियोग जनित चेष्टाएँ
सब
बचकानी हैं
अस्वस्थ हैं
निरर्थक हैं !

यह हमारे लिए
मानव इतिहास में
समय का सबसे बड़ा अपव्यय है !

हमारे लिए
आकर्षण
इन्द्रिय सुख की कामना का पर्याय !
हाव
आंगिक अभिनय का अभ्यासगत स्वरूप,
नाट्य-शालाओं में
प्रवेश प्राप्त कर
सहज ही ग्राह्य!
प्रेमालाप
कृत्रिम
चमत्कारपूर्ण वाणी-विलास !
मिलन
मात्र स्थूल इन्द्रिय सुख के निमित्त !
स्मृति
ढोंग का दूसरा नाम
या

अभाव की पीड़ा !
प्रेम
भ्रम / धोखा
अस्तित्वहीन
'ढाई आखर' का शब्द-मात्र !

(35) ईर्ष्या

ईर्ष्या
करो नहीं,
ईर्ष्या से
डरो नहीं !

किसी की ईर्ष्या-अभिव्यक्ति
संकेतित हो
वाचिक हो
क्रियात्मक हो
तुम्हारी सफलता
बोधिका है !
आत्म-गहनता
शोधिका है !

उससे त्रस्त क्यों होते हो ?
इतने अस्तव्यस्त क्यों होते हो ?

ईर्ष्या
जितनी स्वाभाविक है
उसका दमन
उतना ही आवश्यक है।

ईर्ष्या का
दलन करो,

वरण नहीं !

ईर्ष्या-आश्रय को
सन्तुलित करो,
प्रगति-प्रेरित करो।
उसे विकास के
अवसर दो,
उसके हलके मानस में
गरिमा भर दो।

फिर कोई ईर्ष्या नहीं करेगा,
फिर कोई ईर्ष्या से नहीं डरेगा।

जिस दिन
मानवता
ईर्ष्या के घातों-प्रतिघातों को
सह जाएगी,
उस दिन से
वह मात्र
संचारी-भाव-विवेचन में
महत्त्वहीन हो
काव्य-शास्त्र का साधारण विषय
रह जाएगी !

(36) आत्म-बोध

हम मनुज हैं
मृत्तिका की सृष्टि
सर्वोत्तम
सुभूषित,

प्राणवत्ता चिह्न

सर्वाधिक प्रखर,
अन्तःकरण
    परिशुद्ध ;
प्रज्ञा
    वृद्ध !

लुब्धा
    प्रिय हमें हो,
रजकणों की
अर्थ-गरिमा से
    सुपरिचित हों,
    परीक्षित हों।

मरण-धर्मा
मृत्यु से भयभीत क्यों हो ?
चेतना हतवेग क्यों हो ?
दुर्मना हम क्यों बनें ?
सदसत् विवेचक
मूढ़ग्राही क्यों बनें ?

●

(37) वर्तमान

युग
अराजकता-अरक्षा का,
सतत विद्वेष-स्वर-अभिव्यक्ति का,
कटु यातनाओं से भरा,
अमंगल भावनाओं से डरा !
धूमिल
गरजते चक्रवातों ग्रस्त !
प्रतिक्षण
अभावों-संकटों से त्रस्त !

युग
निर्दय विघातों का,
असह विष दुष्ट बातों का !
अभोगी वेदना का,
लुप्त मानव-चेतना का !

घोर
अनदेखे अँधेरे का !
अजनबी
शोर,
रक्तिम क्रूर जन-घातक
सबेरे का !

●

(38) ऊहापोह

प्रश्न
अविकल स्थिर
अपनी जगह पर।
पंगु
सारी तर्कना,
विखण्डित
कल्पना !
अनिश्चित की शिलाओं तले
रोपित प्रश्न !
सूत्राभाव
पूर्व...उत्तर...सर्वत्र
ठहराव !

यह कश-म-कश
और कब तक ?
विवश मनःस्थिति
और कब तक ?

और कब तक
ओढ़े रहोगे प्रश्न ?
उलझी ऊबट सतह पर।

सब पूर्ववत्
अपनी जगह पर।

(39) परिवेश के प्रति

कितनी तीखी ऊमस से
परिपूर्ण गगन,
लहराती अग्नि-शिखाओं से
कितना परितप्त भुवन !
कितना क्षोभ-युक्त
भाराक्रांत
दमित
मानव-मन !
जीवन का
वातावरण समस्त
थका-हारा,
काराबद्ध !

आओ
इसको बदलें,
गतिमान करें,
मल्लार-राग से भर दें
जलवाह !
पवन-संघातों से
निःशेष करें
दिग्दाह !

(40) वात्याचक्र

अंधड़
आ रहा सम्मुख
उमड़ता
सनसनाता
वेगवाही
धूलि-धूसर !

कुछ क्षणों में
घेर लेगा बढ़
तुम्हारा भी गगन !
जागो उठो
दृढ़ साहसिक मन
हो सचेत-सतर्क !
थपेड़े झेलने का प्रण
अभी
तत्काल
निश्चय आत्मगत कर।

अंधड़ों की शक्ति
तुमको तौलनी है,
संकटों पर
आत्मबल सन्नद्ध हो
जय बोलनी है,
प्राण की सोयी हुई
अज्ञात-मेधा को सचेतन कर !

हिमालय-सम
सुदृढ़ व्यक्तित्व के सम्मुख
गरजता क्रूर अंधड़
राह बदलेगा !

मरण का तीव्र धावन
तिमिर अंधड़
राह बदलेगा !

(41) जीवन-संदर्भ

आओ
जीवन की गीता को
अभिनव संदर्भ प्रदान करें !
बदला
जब परिवेश मनुज का
आओ
नयी ऋचाओं का निर्माण करें !

नव मूल्यों को स्थापित कर
जीवन-धर्मी कविता के
अन्तर-बाह्य स्वरूपों को
अभिनव रचना दे !
जीवन्त नये आदर्शों की आभा दें !
जगमग स्वर्णिम गहने पहना दें !
जीवन की प्रतिमा को
नयी गठन
नव भाव-भंगिमा से सज्जित कर;
मानव को
चिर-इच्छित
संबंधों की गरिमा से
सम्पूरित कर
युग को महिमावान करें !
आओ
नव राहों के अन्वेषी बन
नूतन क्षितिजों की ओर
प्रवह प्रयाण करें !

(42) श्रमजित्

श्रम करेंगे तो
हमारे स्वप्न सब साकार होंगे !
सुदृढ़ आधार होंगे !

उन्मुक्त हो,
सम्पन्नता सुख शान्ति के
नव लोक में
जीवन जिएंगे हम,
सभ्यता-संस्कृति वरण कर
ज्ञानमय आलोक में
प्रतिक्षण रहेंगे हम !
हमारी कल्पनाएँ मूर्त्त होंगी
श्रम करेंगे तो
सतत ज्वाला उगलते
अग्नि-भूधर क्षार होंगे !
हमारे स्वप्न सब साकार होंगे !
श्रम करेंगे तो
अभावों की गहनतम रिक्तता
भर जायगी,
हर हीनता को रौंद
श्रम-जल-धार
जीवन पुण्यमय कर जायगी !
श्रम करेंगे हम
उपस्थित आज आगत के लिए,
भावी अनागत के लिए !
हम
वर्तमान-भविष्य के
अविजित
नियन्ता हो, नियामक हों !
विचक्षण

अभिलषित-जीवन-विधायक हों !

●

(43) संकल्प

शक्तिमत्व हो,
दीपाराधन हो !
मरणान्तक रावण की शर्तें
निविड़-तमिस्रा की पर्तें
टूटेंगी,
टूटेंगी !

कृत-संकल्पों के राम जगे
जन-जन के अन्तर में !
आग्नेय-अस्त्र
पुष्पक-मिग
संचालक उत्पन्न हुए
घर-घर में !
सीमाओं के प्रहरी
बने अजेय हिमालय,
मानवता की निश्चय जय !

दीपोत्सव हो,
दीपोत्सव हो !
ज्योति-प्रणव हो !
हर बार
तमस्र युगों पर
प्रोज्ज्वल विद्युत आभा
फूटेगी,
फूटेगी !

शक्तिमत्व हो,
दीपाराधन हो !

गर्विता अमा का
कण-कण बिखरेगा,
दीपान्विता धरा का
आनन निखरेगा !

●

(44) आश्वस्त

चौराहा हो
या सतराहा
किंकर्त्तव्यविमूढ़ नहीं,
दिग्भ्रम होने का
भय मन पर आरूढ़ नहीं।

माना
पथ से इतनी पहचान नहीं है,
मंज़िल तक हो आने का
परिज्ञान नहीं है,
पर,
लक्ष्य-दृष्टि है साफ़ अगर
तो पढ़ लेगी
पथ पर अंकित
क्रोशों की संख्या,
उत्तर-दक्षिण
पूरब-पश्चिम
स्थित
नगरों के नाम सभी।
फिर
चौराहों-सतराहों से
आगे बढ़ना
नहीं कठिन,
फिर
चौराहों-सतराहों पर

होना नहीं मलिन।

नाना मत,
नाना शासन-पद्धतियाँ,
अगणित राहें,
अगणित नारे-झण्डे,
अनगिनती
आपस में तीव्र विरोधी आवाज़ें,
पर,
यदि युग को पढ़ सकने की
क्षमता है,
यदि जन-मन की धड़कन से
निज अन्तर की समता है,
तो असमंजस का प्रश्न न होगा,
निष्ठा निर्मूल न होगी,
चौराहों-सतराहों के मोड़ों से
पथ भूल न होगी !

(45) विचित्र

पृथ्वी का क्षेत्रफल
चाहे कितना भी हो,
हमें रहने को मिली है
यह कब्र जैसी

कोठरी !
जिसमें
ज़िन्दा होने का
भ्रम होता है,
जिसमें
ख़ुद को मुर्दा समझकर ही
बमुश्किल

जीया जा सकता है !
बरसाती रातों में
यह सोचना
कितना अद्भुत लगता है
मुर्दों की कब्रें
अच्छी हैं इससे
उनकी छतें तो नहीं टपकतीं ;
शव
धरती माँ की गोद में
आराम से तो सोते हैं !
हम तो गीले बिस्तर पर
रात भर जगते हैं,
तत्त्ववेत्ताओं जैसे
चुपचुप रोते हैं !

(46) वैषम्य

हर व्यक्ति का जीवन
नहीं है राजपथ
उपवन सजा
वृक्षों लदा
विस्तृत
अबाधित
स्वच्छ
समतल
स्निग्ध !
सम्भव नहीं
हर व्यक्ति को
उपलब्ध हो
ऐसी सुगमता,
इतनी सुकरता।

सम दिशा
सम भूमि पर
आवास सबके हैं नहीं प्रस्थित,
एक ही गन्तव्य
सबका है नहीं
जब
अभिलषित।

कुछ को
पार करनी ही पड़ेंगी
तंग-सँकरी
कण्ट-कँकरीली
घुमावोंदार
ऊँची और नीची
जन-बहुल
अंधारमय
पगडण्डियाँगलियाँ
पसीने-धूल से अभिषिक्त,
प्रति पग पंक से लथपथ।

नहीं,
हर व्यक्ति का जीवन
सकल सुविधा सहित
आलोक जगमग
राजपथ !

जब भूमि बदलेगी,
मार्ग बदलेगा !

(47) परिणति

आजन्म
अपमानित-तिरस्कृत
ज़िन्दगी
पथ से बहकती यदि
सहज;
आश्चर्य क्या है ?

आजन्म
आशा-हत
सतत संशय-भँवर उलझी
पराजित ज़िन्दगी
अविरत लहकती यदि
सहज;
आश्चर्य क्या है ?

आजन्म
वंचित रह
अभावों-ही-अभावों में
घिसटती ज़िन्दगी
औचट दहकती यदि
सहज;
आश्चर्य क्या है ?

(48) प्रतिबद्ध

हम
मूक कण्ठों में
भरेंगे स्वर
चुनौती के,
विजय-विश्वास के,

सुखमय भविष्य
प्रकाश के,
नव आश के !

हर व्यक्ति का जीवन
समुन्नत कर
धरा को
मुक्त शोषण से करेंगे,
वर्ग के
या वर्ण के
अन्तर मिटा कर
विश्व-जन-समुदाय को
हम
मुक्त दोहन से करेंगे !

न्याय-आधारित
व्यवस्था के लिए
प्रतिबद्ध हैं हम,
त्रस्त दुनिया को
बदलने के लिए
सन्नद्ध हैं हम !

⬣

(49) योगदान

नयी फ़सल के लिए
प्राण श्रम-वारि-कण कुछ
समर्पित,
धरा की रगों को
विमल रक्त-कण कुछ
समर्पित !
सजल हो
सबल हो !

अभीप्सित जगत हेतु
बोया हुआ हर नवल बीज
रे पल्लवित हो,
सुफल हो !
मधुर रस सदृश
हर हृदय में
भरे भावना...कामना

इसलिए
सृष्टि की साधना में
निवेदित
नयी चेतना के प्रवर स्वर !
निःसृत
लोक-हित-निष्ठ
आराधना के सुकर स्वर
समर्पित !

⬣

(50) नवोन्मेष

खण्डित पराजित
ज़िन्दगी ओ !
सिर उठाओ।
आ गया हूँ मैं
तुम्हारी जय सदृश
सार्थक सहज विश्वास का
हिमवान !

अनास्था से भरी
नैराश्य-तम खोयी
थकी हत-भाग सूनी
ज़िन्दगी ओ !
सिर उठाओ,

और देखो
द्वार दस्तक दे रहा हूँ मैं
तुम्हारे भाग्य-बल का
    जगमगाता सूर्य तेजोवान !

ज़िन्दगी
इस तरह
    टूटेगी नहीं !

ज़िन्दगी
इस तरह
    बिखरेगी नहीं !

●